

अच्युत

वार्षिक मूल्य—६)

एक प्रति का— ॥)

सम्पादक ---

पं० चण्डीप्रसाद शुक्ल, प्रिंसिपल जो० म० गोयनका संस्कृत महाविद्यालय,

स० सम्पादक तथा प्रकाशक—

पं० श्रीकृष्ण पन्त साहित्याचार्य, अच्युत-ग्रन्थमाला-कार्यालय,
ललिताघाट काशी ।



अच्युत

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	पंक्ति
१६ वाँ सूत्र—जगद्वाचित्वात्	८६३-१
'यो वै बालाके' इस श्रुतिमें उक्त कर्ता प्राण है [पूर्वपक्ष]	...	८६३-१३
उक्त कर्ता जीव है [पूर्वपक्ष]	...	८६५-२
वह कर्ता ब्रह्म है [सिद्धान्त]	...	८६६-७
१७ वाँ सूत्र—जीवमुख्यप्राण०	८७१-१
वाक्यशेषगत जीवलिंग एवं मुख्यप्राणलिंगसे प्राप्त जीव और प्राणके ग्रहणका परिहार	८७१-१३
१८ वाँ सूत्र—अन्यार्थे तु जैमिनिः०	८७३-१३
उक्त वाक्यमें जीव परामर्श अन्यार्थक है	८७४-२

वाक्यान्वयाधिकरण [पृ० ८७८-८९९]

षष्ठ अधिकरणका सार	८७८-६
१९ वाँ सूत्र—वाक्यान्वयात्	८७९-१
'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' इत्यादि श्रुतिमें उपादिष्ट आत्मा जीव है [पूर्वपक्ष]	...	८८०-५
उक्त आत्मा परमेश्वर है [सिद्धान्त]	...	८८१-७
२० वाँ सूत्र—प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्ग०	८८५-१
उक्त श्रुतिगत जीवोपक्रमके विषयमें आश्रमरथ्य आचार्यका मत	८८५-९
२१ वाँ सूत्र—उत्क्रमिष्यत एवं०	८८६-१
उक्त विषयमें औडुलोमि आचार्यका मत	८८६-१०
२२ वाँ सूत्र—अवस्थितेरिति०	८८७-२०
उक्त विषयमें काशकृत्स्न आचार्यका मत	८८८-२
काशकृत्स्न आचार्यका मत ही उपादेय है	८८९-८
'एतेभ्यो भूतेभ्यः' इस श्रुतिमें जन्म और नाश कहे गये हैं, ऐसा आक्षेप एवं उसका समाधान	८९२-९
जीव और परमात्माका भेद केवल उपाधिनिमित्तक है, पारमार्थिक नहीं है	...	८९५-५
भेदकी कल्पना करनेवालोंके मतमें दोष	८९८-५

प्रकृत्यधिकरण [पृ० ९००-९१५]

सप्तम अधिकरणका सार	९००-६
२३ वाँ सूत्र—प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा०	९०१-१
ब्रह्म जगत्का केवल निमित्तकारण है [पूर्वपक्ष]	९०२-२
ब्रह्म जगत्का उपादानकारण भी है [सिद्धान्त]	९०४-४
कुछ श्रुतियोंमें कथित प्रतिज्ञा और दृष्टान्तका प्रदर्शन	९०४-६
‘यतो वा इमानि’ इस श्रुतिमें पंचमी प्रकृत्यर्थक है	९०७-२
२४ वाँ सूत्र—अभिध्योपदेशाच्च	९०९-१
श्रुत्युक्त चिन्तन भी आत्माको कर्ता और प्रकृति कहता है	९०९-९
२५ वाँ सूत्र—साक्षाच्चोभयाम्नानात्	९१०-१
श्रुतिमें ब्रह्मसे उत्पत्ति और ब्रह्ममें लय कथित है, इसलिए ब्रह्म
उपादानकारण भी है	९१०-११
२६वाँ सूत्र—आत्मकृतेः परिणामात्	९११-१
‘तदात्मानं’ इस श्रुतिमें आत्मा उभयकारण कहा गया है	९११-१०
२७वाँ सूत्र—योनिश्च हि गीयते	९१३-१८
श्रुतिमें ब्रह्म योनिशब्दसे कहा गया है, इसलिए प्रकृति भी है	९१३-२६

सर्वव्याख्यानाधिकरण [पृ० ९१६-९१९]

अष्टम अधिकरणका सार	९१६-६
२८वाँ सूत्र—एतेन सर्वे०	९१७-१
पूर्ववृत्तके कथनपूर्वक अणु आदि कारणवादोंका प्रतिषेध	९१७-१०

स्मृत्यधिकरण [पृ० ९२१-९३९]

द्वितीय अध्यायके प्रथम पादके प्रथम अधिकरणका सार	९२१-१७
प्रथम अध्यायके विषयका अनुवादपूर्वक द्वितीय अध्यायके
आरम्भका कारण कथन	९२२-२
पहला सूत्र—स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग०	९२४-२२
कापिल आदि स्मृतियोंके निरवकाश होनेके कारण उनके अविरोधसे
श्रुतियोंका व्याख्यान करना चाहिए [पूर्वपक्ष]	९२५-७
मनु आदि स्मृतियाँ निरवकाश हो जायँगी, अतः स्मृतिके अनुसार
श्रुतिका व्याख्यान नहीं किया जा सकता	९२८-६

विषय	पृष्ठ	पंक्ति
श्रुत्यनुसारी स्मृतियाँ ही प्रमाण हैं, इतर नहीं	९३०-५
मनु सर्वात्मत्वदर्शनकी प्रशंसा करते हैं	९३४-३
महाभारतमें भी सर्वात्मत्वदर्शन कहा गया है	९३४-८
सर्वथा कापिलतंत्र वेदविरुद्ध है	९३६-६
दूसरा सूत्र—इतरेषां चानुपलब्धेः	९३८-१
कपिलोक्त प्रधानभिन्न महत् आदि अन्यत्र अप्रसिद्ध हैं, अतः कापिलस्मृति अप्रमाण है	९३८-९

योगप्रत्युक्त्याधिकरण [पृ० ९४०-९४६]

द्वितीय अधिकरणका सार	९४०-६
तीसरा सूत्र—एतेन योगः प्रयुक्तः	९४१-१
योग श्रुतिप्रतिपादित है, अतः योगस्मृतिके अनुसार श्रुतिका व्याख्यान करना चाहिए [पूर्वपक्ष]	९४१-१२
उक्त पूर्वपक्षका निरसन [सिद्धान्त]	९४३-३
तत्त्वज्ञान वेदान्तवाक्योंसे ही होता है	९४५-८

विलक्षणत्वाधिकरण [पृ० ९४७-]

तृतीय अधिकरणका सार	९४७-६
चौथा सूत्र—न विलक्षणत्वादस्य०	९४८-१
वेदसमन्वयपर तर्कसे आक्षेप हो सकता है	९४८-१४
चेतन ब्रह्म जगत्का कारण नहीं हो सकता है	९५०-६
जगत् अचेतन है	९५२-५
जगत्को चेतन कहनेवाले एकदेशीका मत	९५३-८
श्रुति जगत्को अचेतन कहती है	९५५-४
भूत और इन्द्रियाँ श्रुतिमें चेतन रूपसे प्रतिपादित हैं	९५६-२
पाँचवाँ सूत्र—अभिमानिव्यपदेशस्तु०	९५७-८
श्रुतिमें भूत और इन्द्रियोंके अभिमानी देवता प्रतिपादित हैं	९५७-१७
सर्वत्र तदभिमानी देवता अनुगत हैं	९५८-८

ॐ सह नावतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहे ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहे ॥



तन्वन् श्रीश्रुतिसिद्धसन्मतमहाग्रन्थप्रकाशप्रथाम्,
ब्रह्माद्वैतसमिद्धशङ्करगिरां माधुर्य्यमुद्भावयन् ।
अज्ञानान्धतमिस्ररुद्धनयनान् दिव्यां दृशं लम्भयन्,
भक्तिज्ञानपथे स्थितो विजयतामाकरूपमेषोऽच्युतः ॥

वर्ष १ }

काशी, कार्तिक पूर्णिमा १९९१

{ अङ्क १०

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि-
र्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

निर्वाणमञ्जरी

अहं नामरो नैव मर्त्यो न दैत्यो न गन्धर्वयक्षः पिशाचप्रभेदः ।
पुमान्नैव न स्त्री तथा नैव षण्डः प्रकृष्टप्रकाशस्वरूपः शिवोऽहम् ॥ १ ॥
अहं नैव बालो युवा नैव वृद्धो न वर्णी न च ब्रह्मचारी गृहस्थः ।
वनस्थोऽपि नाहं न संन्यस्तधर्मा जगज्जन्मनाशैकहेतुः शिवोऽहम् ॥ २ ॥
अहं नैव मन्ता न गन्ता न वक्ता न कर्ता न भोक्ता न मुक्ताश्रमस्थः ।
यथाऽहं मनोवृत्तिभेदस्वरूपस्तथा सर्ववृत्तिप्रदीपः शिवोऽहम् ॥ ३ ॥
यदन्तर्बहिर्व्यापकं नित्यशुद्धं यदेकं सदा सच्चिदानन्दकन्दम् ।
यतः स्थूलसूक्ष्मप्रपञ्चस्य भानं यतस्तत्प्रसूतिस्तदेवाहमस्मि ॥ ४ ॥
यतः कालमृत्युर्विभेति प्रकामं यतश्चित्तबुद्धीन्द्रियाणां विलासः ।
हरिब्रह्मरुद्रेन्द्रचन्द्रादिनामप्रकाशो यतः स्यात्तदेवाहमस्मि ॥ ५ ॥
यदाकाशवत्सर्वगं शान्तरूपं परं ज्योतिराकारशून्यं वरेण्यम् ।
यदाद्यन्तशून्यं परं शङ्कराख्यं यदन्तर्विभाव्यं तदेवाहमस्मि ॥ ६ ॥

—श्रीशंकराचार्यः



जगद्वाचित्वात् ॥ १६ ॥

पदार्थोक्ति—जगद्वाचित्वात्—‘यो ह वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्ता यस्य वैतत् कर्म स वै वेदितव्यः’ इति श्रुतौ कर्मशब्दस्य जगद्वाचित्वात् [कर्ता परमात्मैव] ।

भाषार्थ—‘यो ह वै बालाके०’ (हे बालाके ! जो इन पुरुषोंका कर्ता है और जिसका यह सब कार्य है, वह जानने योग्य है) इस श्रुतिमें कर्मशब्दसे सारे जगत्का बोध होनेके कारण कर्ता परमात्मा ही है ।

भाष्य

कौषीतकिब्राह्मणे बालाक्यजातशत्रुसंवादे श्रूयते—‘यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्ता यस्य वैतत्कर्म स वै वेदितव्यः’ (कौ० ब्रा० ४।१९) इति । तत्र किं जीवो वेदितव्यत्वेनोपदिश्यते उत मुख्यः प्राणः, उत परमात्मेति विशयः । किं तावत् प्राप्तम् ?

प्राण इति । कुतः ? ‘यस्य वैतत् कर्म’ इति श्रवणात् । परिस्पन्द-
भाष्यका अनुवाद

कौषीतकि ब्राह्मणमें बालाकि और अजातशत्रुके संवादमें ‘यो वै बालाक०’ (हे बालाके ! जो इन पुरुषोंका कर्ता है, अथवा यह सारा प्रपञ्च जिसका कर्म है, वही जानने योग्य है) ऐसी श्रुति है । इसमें वेदितव्यरूपसे जीव उपदिष्ट है, या मुख्य प्राण अथवा परमात्मा ? ऐसा संशय होता है । तब क्या प्राप्त होता है ?

रत्नप्रभा

जगद्वाचित्वात् । विषयमाह—कौषीतकीति । बलाकाया अपत्यं बालाकिः ब्राह्मणः तं प्रति राजा उवाच—‘यो वा इति । न केवलमादित्यादीनां कर्ता, किन्तु सर्वस्य जगत् इत्याह—यस्येति । एतत् जगद् यस्य कर्म क्रियते इति व्युत्पत्त्या कार्यम् इत्यर्थः । कर्मेति शब्दस्य योगरूढिभ्यां संशयमाह—तत्रेति । पूर्वत्र एकवाक्यस्थसदादिशब्दबलाद् असच्छब्दो नीतः, इह तु वाक्यभेदाद् ब्रह्म ते रत्नप्रभाका अनुवाद

इस अधिकरणका विषय कहते हैं—“कौषीतकि” इत्यादिसे । बलाकाके पुत्र बालाकि नामक ब्राह्मणसे अजातशत्रु राजाने कहा—“यो वै” इत्यादि । वह केवल आदित्य आदिका कर्ता नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण जगत्का कर्ता है, ऐसा कहते हैं—“यस्य” इत्यादिसे । यह जगत् जिसका कर्म है अर्थात् ‘क्रियते इति कर्म’ (जो किया जाय वह कर्म) इस व्युत्पत्तिसे कार्य है । कर्म-शब्दमें योग और रूढिसे संशय कहते हैं—“तत्र” इत्यादिसे । पूर्व अधिकरणमें एक वाक्यस्थ सत् आदि शब्दोंके बलसे असत् शब्दका अर्थ किया है । यहां तो ‘ब्रह्म ते०’ (मैं तुमसे

भाष्य

लक्षणस्य च कर्मणः प्राणाश्रयत्वात्, वाक्यशेषे च 'अथास्मिन् प्राण एवैकधा भवति' इति प्राणशब्दश्रवणात् । प्राणशब्दस्य च मुख्ये प्राणे प्रसिद्धत्वात् । ये चैते पुरस्ताद् बालाकिना 'आदित्ये पुरुषश्चन्द्रमसि पुरुषः' इत्येवमादयः पुरुषा निर्दिष्टाः, तेषामपि भवति प्राणः कर्ता, प्राणावस्थाविशेषत्वादादित्यादिदेवतात्मनाम्, 'कतम एको देव इति प्राण इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते' (बृ० ३।९।९) इति श्रुत्यन्तरप्रसिद्धेः ।

भाष्यका अनुवाद

पूर्वपक्षी—प्राण उपदिष्ट है ऐसा प्राप्त होता है, क्योंकि 'यस्य वै०' ऐसी श्रुति है, चलनरूप कर्म प्राणमें रहता है, 'अथास्मिन् प्राण०' (उस समय इस प्राणमें ही एक होता है) इस वाक्यशेषमें प्राणशब्द दिखाई देता है और प्राणशब्द मुख्य प्राणरूप अर्थमें प्रसिद्ध है । 'आदित्ये पुरुषः०' (आदित्यमें पुरुष है, चन्द्रमामें पुरुष है) इस प्रकार पूर्ववाक्यमें बालाकिने जिन पुरुषोंका निर्देश किया है, उनका कर्ता भी प्राण हो सकता है, क्योंकि आदित्य आदि देवता प्राणकी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ हैं, 'कतम एको देव०' (एक देव कौन है ? प्राण है, वह ब्रह्म है, वह परोक्ष है, ऐसा कहते हैं) ऐसा अन्य श्रुतिमें प्रसिद्ध

रत्नप्रभा

ब्रवाणीति बालाकिवाक्यस्थब्रह्मशब्देन प्राणादिशब्दो ब्रह्मपरत्वेन नेतुमशक्य इति प्रत्युदाहरणेन पूर्वपक्षमाह—किं तावदिति । पूर्वपक्षे वाक्यस्य प्राणाद्युपास्तिपरत्वाद् ब्रह्मणि समन्वयासिद्धिः सिद्धान्ते ज्ञेये समन्वयसिद्धिरिति फलम् । अथ—सुषुप्तौ, द्रष्टा इति शेषः । श्रुतं पुरुषकर्तृत्वं प्राणस्य कथमित्यत आह—ये चैत इति । सूत्रात्मकप्राणस्य विकाराः सूर्यादय इत्यत्र मानमाह—कतम

रत्नप्रभाका अनुवाद

ब्रह्म कहता हूँ) इस प्रकार बालाकिवाक्यस्थ ब्रह्मशब्दसे प्राण आदि शब्द ब्रह्मपरक नहीं माने जा सकते हैं, क्योंकि यहाँ वाक्यभेद है, प्रत्युदाहरणसे ऐसा पूर्वपक्ष कहते हैं—“किं तावद्” इत्यादिसे । उक्त वाक्य प्राण आदिकी उपासनाका प्रतिपादन करता है, अतः ब्रह्ममें उसके समन्वयकी असिद्धि पूर्वपक्षमें फल है, ज्ञेय ब्रह्ममें समन्वयकी सिद्धि सिद्धान्तमें फल है । 'अथ'—सुषुप्तिमें इस प्राणमें ही द्रष्टा लीन होता है, इसलिए 'द्रष्टा' शेष समझना चाहिए । प्राणको पुरुषोंका कर्ता श्रुति किस प्रकार कहती है ? इसपर कहते हैं—“ये चैते” इत्यादिसे । सूत्रात्मक प्राणके सूर्य आदि विकार हैं, इसमें प्रमाण कहते हैं—“कतमः” इत्यादिसे ।

भाष्य

जीवो वाऽयमिह वेदितव्यतयोपदिश्यते । तस्याऽपि धर्माधर्मलक्षणं कर्म शक्यते श्रावयितुम् 'यस्य वैतत् कर्म' इति । सोऽपि भोक्तृत्वाद् भोगोपकरणभूतानामेतेषां पुरुषाणां कर्तोपपद्यते । वाक्यशेषे च जीवलिङ्गमवगम्यते । यत्कारणं वेदितव्यतयोपन्यस्तस्य पुरुषाणां कर्तुर्वेदनायोपेतं बालाकिं प्रति बुबोधयिषुरजातशत्रुः सुप्तं पुरुषमामन्व्याऽऽमन्त्रणशब्दाश्रवणात् प्राणादीनामभोक्तृत्वं प्रतिबोध्य यष्टिघातोत्थापनात् प्राणादिव्यतिरिक्तं जीवं भोक्तारं प्रति-

भाष्यका अनुवाद

है । अथवा यहां वेदितव्यरूपसे जीवका उपदेश है । उसका भी धर्माधर्मरूप कर्म 'यस्य वैतत्' इस तरह कहा जा सकता है । वह भी भोक्ता होनेसे भोगके साधनभूत इन पुरुषोंका कर्ता हो सकता है । और वाक्यशेषमें भी जीवका लिङ्ग समझा जाता है, क्योंकि वेदितव्यरूपसे उपन्यस्त जो पुरुषोंका कर्ता है, उसका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए आये हुए बालाकिको बोध करानेकी इच्छासे अजातशत्रुने सोते हुए पुरुषको पुकारा और उसके शब्द न सुननेसे अजातशत्रुने बालाकिको यह बोध कराया कि प्राण आदि भोक्ता नहीं हैं, पुनः लाठीके प्रहारसे उसके जागनेसे

रत्नप्रभा

इति । यस्य महिमानः सर्वे देवा इति पूर्ववाक्ये दर्शितम्, अतः सर्वदेवात्मकत्वात् स प्राणो ब्रह्म त्यत्—परोक्षम्, शास्त्रैकवेद्यत्वादित्यर्थः । पूर्वपक्षान्तरमाह—जीवो वेति । यत्कारणं यस्मात् जीवं बोधयति, तस्मादस्ति सुप्तोत्थापनं जीवलिङ्गम् इति योजना । "तौ ह पुरुषं सुप्तमाजग्मतुः" (बृ० २।१।१५) तं राजा "हे बृहत्पाण्डरवासः सोमराजन्" (बृ० २।१।१५) इति आमन्वय—सम्बोध्य सम्बोधनानभिज्ञत्वात् प्राणादेः अनात्मत्वमुक्त्वा यष्ट्याघातेन उरथाप्य जीवं

रत्नप्रभाका अनुवाद

'यस्य महिमानः सर्वे देवाः' (सब देव जिसकी महिमा हैं) ऐसा पूर्व वाक्यमें दिखलाया गया है, इसलिए सर्वदेवात्मक होनेसे प्राण ब्रह्म है । त्यत्—परोक्ष, क्योंकि वह केवल शास्त्रसे ही वेद्य है । दूसरा पूर्वपक्ष कहते हैं—'जीवो वा' इत्यादिसे । 'यत्कारणं.....जीवलिङ्गम्' (चूँकि जीवका बोध कराता है, इसलिए सोते हुएको उठाना जीवका लिङ्ग है) ऐसी योजना करनी चाहिए । बालाकि और अजातशत्रु सोते हुए पुरुषके पास गये, सुप्त पुरुषको अजातशत्रुने 'हे बृहत्पाण्डरवासः सोमराजन्' कहकर पुकारा, परन्तु वह उठा नहीं, इसलिए उसके शब्द न सुननेसे प्राण आदिको अनात्मा कहकर पीछे लाठीके आघातसे उठाकर प्राण आदिसे

भाष्य

काशकृत्स्नीयं मतं श्रुत्यनुसारीति गम्यते, प्रतिपिपादयिषितार्थानुसारात् 'तत्त्वमसि' इत्यादिश्रुतिभ्यः । एवं च सति तज्ज्ञानादमृतत्वमवकल्पते, विकारात्मकत्वे हि जीवस्याऽभ्युपगम्यमाने विकारस्य प्रकृतिसम्बन्धे प्रलयप्रसङ्गात् तज्ज्ञानादमृतत्वमवकल्पेत, अतश्च स्वाश्रयस्य नामरूपस्याऽसम्भवादुपाध्याश्रयं नामरूपं जीव उपचर्यते । अत एवोत्पत्तिरपि जीवस्य

भाष्यका अनुवाद

दोनों स्पष्टतया प्रतीत होते हैं । इन सब मतोंमें आचार्य काशकृत्स्नका मत श्रुत्यनुसारी मालूम पड़ता है, क्योंकि 'तत्त्वमसि' (वह तू है) इत्यादि श्रुतियों द्वारा प्रतिपादन करनेके लिए अभीष्ट जो अर्थ है, उसके अनुसार है । श्रुत्यनुसारी होनेसे उसके ज्ञानसे अमृतत्व संभव है । यदि जीव विकारात्मक माना जाय तो प्रकृतिसे संबन्ध होनेपर विकारका लय हो जानेसे उसके ज्ञानसे अमृतत्व संभव नहीं है । इससे स्वाश्रित नाम और रूपका जीवमें अभाव होनेसे उपाधिके आश्रित नाम, रूपका उसमें उपचार होता है । इसी कारण कहींपर अग्नि और चिनगारियोंके उदाहरणसे श्रुतिद्वारा प्रतिपादित

रत्नप्रभा

भेदोऽपि इत्यर्थः । तत्र अन्त्यस्य मतस्य उपादेयत्वमाह—तत्र काशकृत्स्नीयमिति । सोऽयं देवदत्त इतिवत् 'तत्त्वमसि' आदिवाक्येभ्यः परापरयोः अत्यन्ताभेदः प्रतिपादयितुम् इष्टोऽर्थः, तदनुसारित्वाद् इत्यर्थः । ज्ञानात् मुक्तिश्रुत्यन्यथानुपपत्त्याऽपि अयमेव पक्ष आदेय इत्याह—एवञ्चेति । अत्यन्ताभेदे सति इत्यर्थः । कल्पितस्य भेदस्य ज्ञानात् निवृत्तिः सम्भवति न सत्यस्य इत्यपि द्रष्टव्यम् । यदुक्तम्—नदीदृष्टान्तात् संसारः स्वाभाविक इति, तत् न इत्याह—अतश्चेति । अनामरूपब्रह्मत्वात् जीवस्य इत्यर्थः । उत्पत्तिश्रुत्या जीवस्य ब्रह्मणा

रत्नप्रभाका अनुवाद

अभेदके समान भेद भी । तीनों मतोंमें आचार्य काशकृत्स्नका मत स्वीकारयोग्य है, ऐसा कहते हैं—“तत्र काशकृत्स्नीयम्” इत्यादिसे । 'सोऽयं देवदत्तः' (वह यह देवदत्त है) इसके समान 'तत्त्वमसि' (वह तू है) इत्यादि वाक्योंसे पर और अपर—जीवात्मा और परमात्माके अत्यन्त अभेदका प्रतिपादन करना इष्ट अर्थ है, उसके अनुसारी होनेसे, ऐसा अर्थ है । ज्ञानसे मुक्ति होती है, ऐसा प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियाँ अन्यथा उपपन्न नहीं होतीं, इसलिए भी यही पक्ष उपादेय है, ऐसा कहते हैं—“एवं च” इत्यादिसे । 'एवं च'—अत्यन्त अभेद होनेपर । ज्ञानसे कल्पित भेदकी निवृत्ति हो सकती है, सत्यकी नहीं हो सकती, ऐसा भी समझना चाहिए । नदीके दृष्टान्तसे संसार स्वाभाविक है, ऐसा जो कहा है, वह युक्त नहीं है, ऐसा कहते हैं—“अतश्च” इत्यादिसे । 'अतश्च'—जबिके नामरूपरहित ब्रह्म होनेके

भाष्य

क्वचिदग्निविस्फुल्लिङ्गोदाहरणेन श्राव्यमाणोपाध्याश्रयैव वेदितव्या ।

यदप्युक्तम्—प्रकृतस्यैव महतो भूतस्य द्रष्टव्यस्य भूतेभ्यः समुत्थानं विज्ञानात्मभावेन दर्शयन् विज्ञानात्मन एवेदं द्रष्टव्यत्वं दर्शयति इति, तत्राऽपीयमेव त्रिसूत्री योजयितव्या । ‘प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः’ । इदमत्र प्रतिज्ञातम्—‘आत्मनि विदिते सर्वं विदितं भवति’ ‘इदं सर्वं यदयमात्मा’ (बृ० २।४।६) इति च, उपपादितं च सर्वस्य नामरूपकर्मप्रपञ्चस्यैकप्रसवत्वादेकप्रलयत्वाच्च दुन्दुभ्यादिदृष्टान्तैश्च कार्यकारणयोरव्यतिरेकप्रतिपादनात् तस्या एव प्रतिज्ञायाः सिद्धिं सूचयत्येतच्छिङ्गं यन्महतो

भाष्यका अनुवाद

जीवकी उत्पत्ति भी उपाधिके आश्रित ही समझनी चाहिए ।

प्रकृत सत्य ब्रह्म ही जो द्रष्टव्य है, उसका भूतोंसे समुत्थान विज्ञानात्मभावसे दिखलते हुए मुनि विज्ञानात्मा ही द्रष्टव्य है, ऐसा दर्शाते हैं, यह जो कहा है, उसमें भी इसी त्रिसूत्रीकी योजना करनी चाहिए । ‘प्रतिज्ञासिद्धे०’ यहांपर ‘आत्मनि विदिते सर्वं०’ (आत्माका ज्ञान होनेपर सबका ज्ञान हो जाता है) और ‘इदं सर्वं यद०’ (यह सब दृश्य प्रपञ्च आत्मा ही है) ऐसी प्रतिज्ञा है । नाम, रूप और कर्म प्रपञ्चका आत्मरूपत्व उपपादित भी है, क्योंकि एक उत्पत्तिस्थान और एक प्रलयस्थान होने और दुन्दुभि आदिके दृष्टान्तोंसे कार्य और कारण अभिन्न हैं, ऐसा प्रतिपादन है । जो सत्य द्रष्टव्य ब्रह्मका भूतोंसे

रत्नप्रभा

भेदाभेदौ इत्यत आह—अत एवेति । उत्पत्तेः स्वाभाविकत्वे मुक्तययोगाद् एव इत्यर्थः ।

अत्र पूर्वपक्षे बीजत्रयमुक्तम्—जीवेन उपक्रमः, परस्यैव समुत्थानश्रुत्या जीवाभेदाभिधानम्, विज्ञातृशब्दश्चेति । तत्र आद्यं बीजं त्रिसूत्र्या निरस्तम्, सम्प्रति द्वितीयम् अनूद्य तयैव निराचष्टे—यदप्युक्तमित्यादिना । आत्मज्ञानात् सर्वज्ञानं

रत्नप्रभाका अनुवाद

कारण । उत्पत्ति श्रुतिसे जीवका ब्रह्मसे भेद और अभेद दोनों हों, इसपर कहते हैं—“अत एव” इत्यादि । अर्थात् यदि उत्पत्ति स्वाभाविक हो, तो मुक्ति ही नहीं हो सकती इसलिए ।

यहां पूर्वपक्षमें तीन बीज कहे हैं—जीवसे उपक्रम, समुत्थान श्रुतिसे परमात्माका ही जीवके अभेदसे अभिधान और विज्ञातृशब्द । उनमें आद्य बीजका त्रिसूत्रीसे निराकरण किया गया । अब दूसरे बीजका अनुवाद करके उसी त्रिसूत्रीसे उसका निराकरण

भाष्य

भूतस्य द्रष्टव्यस्य भूतेभ्यः समुत्थानं विज्ञानात्मभावेन कथितमित्याश्मरथ्य आचार्यो मन्यते । अभेदे हि सत्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञातमवकल्पत इति । 'उत्क्रमिष्यत एवंभावादित्यौडुलोमिः' । उत्क्रमिष्यतो विज्ञानात्मनो ज्ञानध्यानादिसामर्थ्यात् संप्रसन्नस्य परेणाऽऽत्मनैक्यसम्भवादिदमभेदाभिधानमित्यौडुलोमिराचार्यो मन्यते । 'अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः' । अस्यैव परमात्मनोऽनेनाऽपि विज्ञानात्मभावेनाऽवस्थानादुपपन्नमिदमभेदाभिधानमिति काशकृत्स्न आचार्यो मन्यते ।

ननूच्छेदाभिधानमेतत्—'एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न भेत्य संज्ञाऽस्ति' (बृ० २।४।१२) इति कथमेतदभेदाभि-

भाष्यका अनुवाद

विज्ञानात्मरूपसे समुत्थान कहा गया है, वह लिङ्ग इसी प्रतिज्ञाकी सिद्धिका सूचक है, ऐसा आश्मरथ्य आचार्यका मत है, क्योंकि अभेद होनेपर एक विज्ञानसे सर्वविज्ञान, जिसकी प्रतिज्ञा की है, उपपन्न होता है । 'उत्क्रमिष्यत०' उत्क्रमण करनेवाले, ज्ञान, ध्यान आदि सामर्थ्यसे संप्रसन्न हुए विज्ञानात्माका परमात्माके साथ ऐक्यका संभव होनेसे यह अभेदका अभिधान युक्त है, ऐसा काशकृत्स्न आचार्यका मत है ।

परन्तु 'एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय०' (इन भूतोंसे समुत्थान करके इनके अनन्तर ही नष्ट हो जाता है, मरणानन्तर ज्ञान नहीं रहता) इस प्रकार उच्छेदका अभिधान है, यह अभेदका अभिधान

रत्नप्रभा

यत् प्रतिज्ञातं, तत्र हेतुः "इदं सर्वं यदयमात्मा" (बृ० २।४।६) इत्यव्यतिरेक उक्तः, तस्य प्रतिपादनात् तदेव प्रतिज्ञातम् उपपादितम् इति योजना । एकस्मात् प्रसवो यस्य, एकस्मिन् प्रलयो यस्य, तद्भावादित्यर्थः । समुत्थानम्—अभेदाभिधानमिति यावद् ।

जन्मनाशौ उक्तौ नाभेद इत्याक्षिप्य परिहरति—नन्वित्यादिना । मृतस्य संज्ञा

रत्नप्रभाका अनुवाद

करते हैं—'यदप्युक्तम्' इत्यादिसे । आत्मज्ञानसे जिस सर्वविज्ञानकी प्रतिज्ञा की गई है, उसका हेतु 'इदं सर्वं०' (जो यह प्रपंच है, वह आत्मा है) इस धृतिसे उक्त अभेद कहा गया है, उसका प्रतिपादन करनेसे जिसकी प्रतिज्ञा की उसीका प्रतिपादन हुआ है, ऐसी योजना करनी चाहिए । एकसे उत्पत्ति है जिसकी वह एक प्रसव, एकमें प्रलय है जिसका वह एकप्रलय, तद्भावसे । समुत्थान--अभेदाभिधान ।

परन्तु इससे जीवात्माका जन्म और नाश कहे गये हैं, अभेद नहीं

भाष्य

धानम् । नैष दोषः । विशेषविज्ञानविनाशाभिप्रायमेतद्विनाशाभिधानं नाऽऽ-
त्मोच्छेदाभिप्रायम् । 'अत्रैव मा भगवानमूढहन् प्रेत्य संज्ञाऽस्ति' इति पर्य-
नुयुज्य स्वयमेव श्रुत्याऽर्थान्तरस्य दर्शितत्वात्—'न वा अरेऽहं मोहं ब्रवी-
म्यविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा मात्रासंसर्गस्त्वस्य भवति'
इति । एतदुक्तं भवति—कूटस्थनित्य एवाऽयं विज्ञानधन आत्मा नाऽऽस्यो-
च्छेदप्रसङ्गोऽस्ति, मात्राभिस्त्वस्य भूतेन्द्रियलक्षणाभिरविद्याकृताभिरसंसर्गो
विद्यया भवति, संसर्गाभावे च तत्कृतस्य विशेषविज्ञानस्याऽभावात् प्रेत्य
संज्ञाऽस्तीत्युक्तमिति । यदप्युक्तम्—'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्' इति

भाष्यका अनुवाद

कैसे है ? यह दोष नहीं है । यह जो विनाशका अभिधान है, उसका
तात्पर्य विशेष विज्ञानके विनाशमें है, आत्माके उच्छेदमें नहीं है,
क्योंकि 'अत्रैव मा भगवान०' (मरणके अनन्तर ज्ञान नहीं रहता,
यह कह कर आपने मुझे मोहमें डाल दिया है) ऐसा पर्यनुयोग (आक्षेप)
करके श्रुति द्वारा स्वयं ही अन्य अर्थ दिखलाया है—'न वा अरेऽहं मोहं
ब्रवीम्यविनाशी०' (हे मैत्रेयि ! मैं ऐसा कुछ नहीं कहता जिससे मोह हो, अरे !
आत्मा नाशहेतुरहित है, अतः अविनाशी है, देह, इन्द्रिय आदिके साथ इसका
संसर्ग नहीं होता है) । तात्पर्य यह है कि यह आत्मा कूटस्थ, नित्य और विज्ञान-
नैकरस है, उसका उच्छेद नहीं हो सकता । अविद्यासे जनित भूतेन्द्रियलक्षण
मात्राओंके साथ इसके संसर्गका अभाव विद्यासे होता है । संसर्गके अभावसे

रत्नप्रभा

नास्तीति वाक्ये अत्रैव मां मोहितवानसि ज्ञानरूपस्य आत्मनो ज्ञानाभावे नाशप्रसङ्गादिति
मैत्रेय्या उक्तो मुनिराह—न वा अरे इति । मोहं मोहकरवाक्यम्, अविनाशी नाशहेतु-
शून्यः, अत उच्छित्तिधर्मा नाशवान् न भवतीति अनुच्छित्तिधर्मा इत्यर्थः । तृतीयं
बीजं तृतीयेन मतेन एव निरसनीयम् इत्याह—यदपीत्यादिना । आद्यमतद्वये सत्यभेदा-

रत्नप्रभाका अनुवाद

कहा गया है, ऐसा आक्षेप करके उसका परिहार करते हैं—'ननु' इत्यादिसे ।
'न प्रेत्य संज्ञास्ति'—मरे हुए को ज्ञान नहीं होता, यह कह कर हे भगवन् !
आपने मुझे मोहमें डाल दिया है, क्योंकि ज्ञानरूप आत्माका, ज्ञानके अभावमें नाश हो
जायगा, ऐसा मैत्रेयीके कहनेपर मुनिने कहा—'न वा अरे' इत्यादि । 'मोहम्'—मोहकर
वाक्यको, अविनाशी-नाशहेतुशून्य, विनाशके अयोग्य, इसीलिए अनुच्छित्तिधर्मा—नाशवान्

भाष्य

कर्तृवचनेन शब्देनोपसंहाराद्विज्ञानात्मन एवेदं द्रष्टव्यत्वम् इति, तदपि काशकृत्स्नीयेनैव दर्शनेन परिहरणीयम् । अपि च 'यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति' (बृ० २।४।१३) इत्यारभ्याविद्याविषये तस्यैव दर्शनादिलक्षणं विशेषविज्ञानं प्रपञ्चय 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्' इत्यादिना विद्याविषये तस्यैव दर्शनादिलक्षणस्य विशेषविज्ञानस्याभावमभिदधाति । पुनश्च विषयाभावेऽपि आत्मानं विजानीयात् इत्या-

भाष्यका अनुवाद

उससे किये गये विशेषविज्ञानके अभावसे 'न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति' (मरणके अनन्तर ज्ञान नहीं रहता) ऐसा कहा है । 'विज्ञातारमरे०' (अरे, विज्ञाताको किससे जाने) ऐसा कर्तृवाचक शब्दसे उपसंहार है, उससे विज्ञानात्मा ज्ञेय है, ऐसा जो कहा है, उसका भी काशकृत्स्नके मतसे ही परिहार करना युक्त है । उसी प्रकार 'यत्र हि द्वैतमिव०' (परन्तु जहां द्वैत-सा होता है, वहां दूसरा दूसरेको देखता है) ऐसा आरंभ करके अविद्याविषयमें उसके ही दर्शन आदि रूप विशेषविज्ञानका प्रपंच करके 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्०' (परन्तु जहां इसका सब आत्मा ही हो गया वहां किससे किसको देखे) इत्यादिसे विद्याविषयमें उसके ही दर्शन आदि लक्षण विशेष विज्ञानका अभाव कहते हैं । और विषयके अभावमें भी आत्माका विज्ञान प्राप्त हो,

रत्नप्रभा

ङ्गीकारात् केनेति आक्षेपो न युक्तः काशकृत्स्नस्य मते तु अत्यन्ताभेदाद् विज्ञानस्य कारकाभावात् स युक्त इति । श्रुत्यनुसारित्वात् तन्मते मनःकल्पितं विज्ञातृत्वं मुक्ते ब्रह्मात्मनि भूतपूर्वगत्या उक्तमिति परिहरणीयम् इत्यर्थः । किञ्च, पूर्वापरपर्यालोचनया वाक्यस्य मुक्तात्मपरत्वावगमाद् विज्ञातृत्वं कल्पितमेव अनूद्यते इति न तल्लिङ्गेन जीवपर-

रत्नप्रभाका अनुवाद

नहीं है । पूर्वपक्षके तीसरे बीजका तृतीय मत-काशकृत्स्नके मतसे ही निरसन करना चाहिए, ऐसा कहते हैं-“यदपि” इत्यादिसे । आश्चर्य और औडुलोमि इन दोनोंके मतमें सत्य भेदका अंगीकार होनेसे 'केन' (किससे) ऐसा आक्षेप युक्त नहीं है । काशकृत्स्नके मतमें तो अत्यन्ताभेद स्वीकार है, इसलिए विज्ञानके कारकका अभाव होनेसे आक्षेप युक्त है, इस प्रकार काशकृत्स्नके मतके श्रुत्यनुसारी होनेसे उस मतमें मनःकल्पित विज्ञातृत्व मुक्त ब्रह्मात्मामें भूतपूर्वगतिसे कहा गया है, इस प्रकार परिहार करना चाहिए, ऐसा अर्थ है । और वाक्यके पूर्वापर संबन्धका पर्यालोचन करनेसे प्रतीत होता है कि वह वाक्य मुक्त आत्माका ही प्रतिपादन करता है, इससे

भाष्य

शङ्क्य 'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्' इत्याह । ततश्च विशेषविज्ञानाभावोपपादनपरत्वाद् वाक्यस्य विज्ञानधातुरेव केवलः सन् भूतपूर्वगत्या कर्तृवचनेन तृचा निर्दिष्ट इति गम्यते । दर्शितं तु पुरस्तात् काशकृत्स्नीयस्य पक्षस्य श्रुतिमत्त्वम्, अतश्च विज्ञानात्मपरमात्मनोरविद्याप्रत्युपस्थापितनामरूपरचितदेहाद्युपाधिनिमित्तो भेदो न पारमार्थिक इत्येषोऽर्थः सर्वैर्वेदान्तवादिभिरभ्युपगन्तव्यः । 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छा० ६।२।१) 'आत्मैवेदं सर्वम्' (छा० ७।२५।२), 'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' (मु० २।२।११), 'इदं सर्वं यदयमात्मा' (बृ० २।४।६) 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा'

भाष्यका अनुवाद

ऐसी आशंका करके 'विज्ञातारमरे केन०' (अरे विज्ञाताको किससे जाने) ऐसा कहते हैं । वाक्य विशेष विज्ञानके अभावका प्रतिपादन करता है, इसलिए विज्ञानैकरस ही केवल है, तो भी पूर्वकी जो स्थिति थी, उस स्थितिसे कर्तृवाचक 'तृच्' प्रत्ययसे निर्दिष्ट है, ऐसा समझा जाता है । काशकृत्स्नका मत श्रुतिप्रतिपादित है, ऐसा तो पूर्वमें दर्शाया गया है, इसलिए विज्ञानात्मा और परमात्माका भेद अविद्यासे उपस्थापित नाम और रूपसे कल्पित देह आदि उपाधियों द्वारा किया गया है, पारमार्थिक नहीं है, ऐसा सब वेदान्तवादियोंको स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि 'सदेव सोम्येदमग्र०' (हे प्रिय ! पूर्वमें यह सत्स्वरूप एक और अद्वितीय ही था) 'आत्मैवेदं०' (यह सब आत्मा ही है) 'ब्रह्मैवेदं०' (यह सब ब्रह्म ही है) 'इदं सर्वं यद०' (जो यह सब है, वह आत्मा ही है) 'नान्योऽतोऽस्ति०' (इससे दूसरा द्रष्टा नहीं है) 'नान्य-

रत्नप्रभा

त्वम् इत्याह—अपि चेति । आर्षेषु पक्षेषु काशकृत्स्नपक्षस्यैव आदेयत्वे किं बीजं तदाह—दर्शितमिति । अतश्च—श्रुतिमत्त्वाच्च । पुनरपि श्रुतिस्मृतिमत्त्वम् आह—सदेवेत्यादिना । हेतुनां 'भेदो न पारमार्थिकः' इति प्रतिज्ञया सम्बन्धः । भेदाभेद-

रत्नप्रभाका अनुवाद

कल्पित विज्ञातृत्वका ही अनुवाद होता है, इसलिए विज्ञातृत्वलिङ्गसे वाक्यको जीवपरक मानना युक्त नहीं है, ऐसा कहते हैं—“अपि च” इत्यादिसे । तीनों ऋषियोंके पक्षोंमेंसे काशकृत्स्नका पक्ष ही ग्रहण करने योग्य है, इसका बीज कहते हैं—“दर्शितम्” इत्यादिसे । 'अतश्च'—श्रुतिप्रतिपादित होनेसे । फिर भी श्रुति और स्मृतिप्रमाण कहते हैं—“सदेव” इत्यादिसे । भाष्योक्त हेतुओंका 'भेदो न पारमार्थिकः' इस प्रतिज्ञासे संबन्ध है । भेदाभेदपक्षमें

भाष्य

(बृ० ३।७।२३), 'नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ' (बृ० ३।८।११) इत्येवंरूपाभ्यः श्रुतिभ्यः, स्मृतिभ्यश्च 'वासुदेवः सर्वमिति' (गी० ७।१९), 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत' (गी० १३।२), 'समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्' (गी० १३।२७) इत्येवंरूपाभ्यः । भेददर्शनापवादाच्च 'अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुः' (बृ० १।४।१०), 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' (बृ० ४।४।१९) इत्येवंजातीयकात् । 'स वा एष महानज आत्माऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्म' (बृ० ४।४।२५) इति चाऽऽत्मनि सर्वविक्रियाप्रतिषेधात्, अन्यथा च मुमुक्षूणां निरपवादविज्ञानानुपपत्तेः, सुनिश्चितार्थत्वानुपपत्तेश्च । निरपवादं हि

भाष्यका अनुवाद

दतोऽस्ति०' (इससे दूसरा द्रष्टा नहीं है) इत्यादि श्रुतियां और 'वासुदेवः सर्व०' (सब वासुदेव है) 'क्षेत्रज्ञं चापि मां०' (हे भारत ! सब क्षेत्रोंमें मुझको क्षेत्रज्ञ जानो) 'समं सर्वेषु भूतेषु०' (सब भूतोंमें समभावसे रहे हुए परमेश्वरको) इत्यादि स्मृतियाँ हैं । और 'अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति०' (यह अन्य है, मैं 'अन्य हूँ, इस प्रकार जो उपासना करता है, वह पशुके समान है, तत्त्व नहीं जानता) और 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति०' (जिसे यहां भेद-सा प्रतीत होता है, वह मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है) इत्यादि श्रुतिसे भेददर्शनका निषेध है । और 'स वा एष महानज आत्मा०' (वह महान् जन्मरहित आत्मा जरारहित, अजर, अमर, अमृत और अभय ब्रह्म है) इस प्रकार आत्मामें सब विकारोंका प्रतिषेध है । ऐसा न हो तो मुमुक्षुओंको अपवादरहित विज्ञान नहीं हो सकता और तत्त्वनिश्चय भी नहीं हो सकता, क्योंकि सब आकांक्षाओंकी

रत्नप्रभा

पक्षे जीवस्य जन्मादिविकारवत्त्वात् तन्निषेधो न स्यादित्याह—स वा एष इति । भेदस्य सत्यत्वे तत्प्रमया बाधाद् अहं ब्रह्मेति निर्बाधं ज्ञानं न स्यात् इत्याह—अन्यथा चेति । अभेदस्यापि सत्त्वात् प्रमा इत्याशङ्क्य भेदाभेदयोः विरोधात् संशयः स्याद् इत्याह—

रत्नप्रभाका अनुवाद

जीवके जन्म आदि विकारयुक्त होनेसे उसका निषेध नहीं हो सकता है, इसपर कहते हैं—“स वा एष” इत्यादि । भेद सत्य हो, तो यथार्थ ज्ञानसे उसका बाध होनेसे 'अहं ब्रह्म' (मैं ब्रह्म हूँ) ऐसा निर्बाध ज्ञान न हो, ऐसा कहते हैं—“अन्यथा च” इत्यादिसे । अभेदका भी यथार्थ ज्ञान हो, क्योंकि उसकी भी सत्ता है, ऐसी आशंका करके भेद और

भाष्य

विज्ञानं सर्वाकाङ्क्षानिवर्तकमात्मविषयमिष्यते, 'वेदान्तविज्ञानमुनिश्चितार्थाः' (मु० ३।२।६) इति च श्रुतेः, 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ई० ७) इति च । स्थितप्रज्ञलक्षणस्मृतेश्च (गी० २।५४) । स्थिते च क्षेत्रज्ञपरमात्मैकत्वविषये सम्यग्दर्शने क्षेत्रज्ञः परमात्मेति नाममात्रभेदात् क्षेत्रज्ञोऽयं परमात्मनो भिन्नः परमात्माऽयं क्षेत्रज्ञाद् भिन्न इत्येवंजातीयक आत्मभेदविषयो निर्बन्धो निरर्थकः । एको ह्ययमात्मा नाम-
भाष्यका अनुवाद

निवृत्ति करनेवाला अपवादरहित आत्मविषयक विज्ञान इष्ट है, क्योंकि 'वेदान्त-विज्ञानं' (वेदान्तके विज्ञानसे जिनको तत्त्वज्ञान हो चुका है) और 'तत्र को मोहः०' (उसमें एकत्वका दर्शन करनेवालेको क्या मोह और क्या शोक है) ऐसी श्रुतियाँ हैं । और स्थितप्रज्ञका लक्षण कहनेवाली स्मृति भी है । इस प्रकार क्षेत्रज्ञ और परमात्मा एक ही है, ऐसा तत्त्वज्ञान होनेपर क्षेत्रज्ञ और परमात्मा ऐसे नाममात्रका भेद होनेसे यह क्षेत्रज्ञ परमात्मासे भिन्न है, यह परमात्मा क्षेत्रज्ञसे भिन्न है, इस प्रकारका आत्माके भेदका आग्रह करना व्यर्थ है, क्योंकि यह

रत्नप्रभा

मुनिश्चितेति । माऽस्तु निर्बाधज्ञानम् इत्यत आह—निरपवादमिति । "अहं ब्रह्म" इत्यबाधितनिश्चयस्यैव शोकादिनिवर्तकत्वम् इत्यत्र स्मृतिमपि आह—स्थितेति । आत्यन्तिकैकत्वे हि प्रज्ञा प्रतिष्ठिता भवति, न भेदाभेदयोः इति भावः । ननु जीवपरमात्मानौ स्वतो भिन्नौ अपर्यायनामवत्त्वात् स्तम्भकुम्भवदित्यत आह—स्थिते चेति । कथं तर्ह्यपर्यायनामभेद इत्याशङ्क्य जीवत्वेश्वरत्वादिनिमित्तभेदादित्याह—एको हीति । किञ्च, अविद्यातज्जबुद्धिरूपायां गुहायां स्थितो जीवो भवति 'तस्या-

रत्नप्रभाका अनुवाद

अभेदके विरोधसे संशय हो, ऐसा कहते हैं—“मुनिश्चित” इत्यादिसे । निर्बाध ज्ञान न हो, उससे क्या ? इसपर कहते हैं—“निरपवादम्” इत्यादिसे । 'अहं ब्रह्म' (मैं ब्रह्म हूँ) ऐसा अबाधित निश्चय ही शोक आदिको निवृत्त करता है, उसके लिए स्मृति भी कहते हैं—“स्थित” इत्यादिसे । आत्यन्तिक एकत्व होनेपर ही प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है, भेदाभेदमें नहीं होती, ऐसा तात्पर्य है । यदि कोई कहे कि जीव और परमात्मा स्वयं भिन्न हैं, क्योंकि स्तम्भ, कुम्भ आदिके समान पर्यायशब्दवाच्य नहीं हैं, इसपर कहते हैं—“स्थिते च” इत्यादि । तब अपर्यायनामका भेद क्यों है, ऐसी आशंका करके जीवत्व, ईश्वरत्व आदि निमित्तोंके भेदसे है, ऐसा कहते हैं—“एको हि” इत्यादिसे । तथा अविद्या और उससे

भाष्य

मात्रभेदेन बहुधाऽभिधीयत इति, नहि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, यो वेद निहितं गुहायाम्' (तै० २।१) इति काश्चिदेवैकां गुहामधिकृत्यैतदुक्तम् । न च ब्रह्मणोऽन्यो गुहायां निहितोऽस्ति, 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तै० २।६) इति स्रष्टुरेव प्रवेशश्रवणात् । ये तु निर्वन्धं कुर्वन्ति ते

रत्नप्रभाका अनुवाद

आत्मा एक ही है परन्तु नाममात्रके भेदसे बहुत प्रकारसे उसका अभिधान होता है । 'सत्यं ज्ञानमनन्तं' (जो सत्य, ज्ञान, अनन्त ब्रह्मको गुहामें स्थित जानता है) यह कथन किसी एक गुहाके उद्देशसे नहीं है । और ब्रह्मसे अतिरिक्त व्यक्ति गुहामें स्थित नहीं है, क्योंकि 'तत्सृष्ट्वा' (ब्रह्मने कार्यप्रपंचको उत्पन्न करके उसीमें अनुप्रवेश किया) इस प्रकार स्रष्टाका ही प्रवेश श्रुतिमें कहा गया

रत्नप्रभा

मेव ब्रह्म निहितम्' इति श्रुतेः । स्थानैक्यात् जीव एव ब्रह्मेत्याह—नहीति । काश्चिदेवैकामिति । जीवस्थानाद् अन्यामित्यर्थः । ननु एकस्यां गुहायां द्वौ किं न स्याताम् इत्यत आह—न चेति । स्रष्टुरेव प्रवेशेन जीवत्वात् न भेदः । ननु अत्यन्ताभेदे जीवस्य स्पष्टभानाद् ब्रह्मापि स्पष्टं स्याद् अतः स्पष्टत्वास्पष्टत्वाभ्यां तयोः भेद इति चेत्, न; दर्पणे प्रतिबिम्बस्य स्फुटत्वेऽपि बिम्बस्य अस्फुटत्ववत् कल्पितभेदेन विरुद्धधर्मव्यवस्थोपपत्तेः । सत्यभेदे येषाम् आग्रहः तेषां दोषमाह—ये त्विति । सोऽयम् इतिवत् तत्त्वमसि इति अकार्यकरणद्रव्यसामानाधिकरण्याद् अत्यन्ताभेदो वेदान्तार्थः तद्बोध एव निःश्रेयससाधनम् तस्य बाधो न युक्त इत्यर्थः । किञ्च,

रत्नप्रभाका अनुवाद

जन्य बुद्धिरूप गुहामें स्थित ब्रह्म ही जीव कहलाता है, क्योंकि 'तस्यामेव' (उस गुहामें ब्रह्म ही स्थित है) ऐसी श्रुति है । स्थानके एक होनेसे भी जीव ब्रह्म ही है, ऐसा कहते हैं—“नहि” इत्यादिसे । “काश्चिदेवैकाम्” अर्थात् जीवस्थानसे अन्य, जीवभावसे परमात्माके प्रतिबिम्बका जो आधार है, उससे अन्य । एक गुहामें दो क्यों न रहें, इसपर कहते हैं—“न च” इत्यादि । स्रष्टा ही प्रविष्ट होनेसे जीव कहलाता है, अतः जीव और ब्रह्ममें भेद नहीं है । परन्तु अत्यन्त अभेद हो, तो जीवका स्पष्ट भान होता है, इससे ब्रह्म भी स्पष्ट हो, इसलिये स्पष्टत्व और अस्पष्टत्वसे दोनोंका भेद है, ऐसी शंका युक्त नहीं, क्योंकि जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्बके स्पष्ट होनेपर भी बिम्ब स्पष्ट नहीं होता, उसी प्रकार कल्पित भेदसे विरुद्धधर्मकी व्यवस्था युक्त होती है । सत्य भेदमें जिनका आग्रह है, उनके मतमें दोष दिखलाते हैं—“ये तु” इत्यादिसे । 'सोऽयम्' (वह यह है) इसके समान 'तत्त्वमसि' (वह तू है) इस वाक्यमें कार्यकरणसमूहसे भिन्न द्रव्यका सामानाधिकरण्य है, अतः

भाष्य

वेदान्तार्थं बाधमानाः श्रेयोद्वारं सम्यग्दर्शनमेव बाधन्ते, कृतकमनित्यं च मोक्षं कल्पयन्ति, न्यायेन च न संगच्छन्त इति ॥ २२ ॥

भाष्यका अनुवाद

है। परन्तु जो आप्रह करते हैं, वे वेदान्तके अर्थका बाध करते हुए श्रेय-मात्रके द्वार सम्यग्ज्ञानका ही बाध करते हैं, मोक्ष कर्मसाध्य एवं अनित्य है, ऐसी कल्पना करते हैं और न्यायका अनुसरण नहीं करते ॥ २२ ॥

रत्नप्रभा

भेदाभेदवादिनो ज्ञानकर्मभ्यां कृतकं मोक्षं कल्पयन्ति, तत्रानित्यत्वं दोषः । यत्तु कृतकमपि नित्यमिति, तच्च यत् क्रियासाध्यं तदनित्यम् इतिन्यायबाधितम् । अस्माकं तु अनर्थध्वंसस्य ज्ञानसाध्यत्वात् नित्यमुक्तात्ममात्रत्वात् च न अनित्यत्वदोष इति भावः । तस्मात् मैत्रेयीब्राह्मणं प्रत्यग्ब्रह्मणि समन्वितमिति सिद्धम् ॥२२॥ (६)

रत्नप्रभाका अनुवाद

आत्यन्तिक अभेद ही वेदान्तोंका अर्थ है और उसका बोध ही मोक्षका साधन है, इससे उसका बाध युक्त नहीं, ऐसा अर्थ है। और भेदाभेदवादी ज्ञान और कर्मसे जो कृतक मोक्षकी कल्पना करते हैं, उसमें अनित्यताका दोष आता है। कृतक है, तो भी नित्य है, यह कथन तो जो क्रियासाध्य है, वह अनित्य है, इस न्यायसे बाधित होता है। हमारे मतमें तो अनर्थका ध्वंस ज्ञानसाध्य होने और नित्यमुक्त आत्ममात्र होनेसे अनित्यताका दोष नहीं आता। इसलिए मैत्रेयीब्राह्मण प्रत्यग्ब्रह्ममें समन्वित है, ऐसा सिद्ध हुआ ॥ २२ ॥



[७ प्रकृत्यधिकरण । सू० २३-२७]

निमित्तमेव ब्रह्म स्यादुपादानं च वीक्षणात् ।

कुलालवन्निमित्तं तन्नोपादानं मृदादिवत् ॥१॥

बहु स्यामित्युपादानभावोऽपि श्रुत ईक्षितुः ।

एकबुद्ध्या सर्वधीश्च तस्माद् ब्रह्मोभयात्मकम्* ॥२॥

[अधिकरणसार]

सन्देह—ब्रह्म जगत्का निमित्तकारण ही है अथवा उपादानकारण भी है ?

पूर्वपक्ष—श्रुतिमें सृज्यमान पदार्थोंका ईक्षण कहा है, इसलिए कुलाल आदिके समान ब्रह्म निमित्तकारण है, उपादानकारण नहीं है।

सिद्धान्त—श्रुतिमें ईक्षणकर्ता 'बहु स्याम्' (मैं बहुत होऊँ) इस प्रकार उपादानकारण भी कहा गया है और श्रुत्युक्त एकविज्ञानसे सर्वविज्ञान उपादानकारणके ज्ञानसे ही हो सकता है, इसलिए ब्रह्म जगत्का निमित्तकारण और उपादानकारण—दोनों है।

* तात्पर्य यह है—जगत्के कारणको प्रतिपादन करनेवाले सब वाक्य इस अधिकरणके विषय हैं। उनमें संशय होता है कि ब्रह्म केवल निमित्तकारण ही है अथवा उपादानकारण भी है ?

पूर्वपक्षी कहता है कि ब्रह्म केवल निमित्तकारण है, क्योंकि श्रुतिमें "तदैक्षत" इस प्रकार सृज्यमान कार्योंकी आलोचनाका श्रवण है। आलोचन-शक्ति केवल निमित्तकारणभूत कुलाल आदिमें ही देखी जाती है, उपादानकारणभूत मृत्तिका आदिमें नहीं देखी जाती अतः ब्रह्म निमित्तकारण ही है।

सिद्धान्ती कहते हैं कि "तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय" इस प्रकार ईक्षणकर्ताका ही बहुभाव श्रुतिमें कहा गया है, इसलिए वही उपादानकारण है। और "येनाश्रुतं श्रुतं भवति" इत्यादिसे एक ब्रह्मका ज्ञान होनेपर अश्रुत जगत् भी श्रुत हो जाता है, एक ब्रह्मका ज्ञान होनेपर सबका विज्ञान हो जाता है, ऐसा प्रतिपादन किया गया है। वह तभी उपपन्न हो सकता है जब कि ब्रह्म सब कार्योंका उपादानकारण हो, ब्रह्मसे भिन्न कोई कार्य ही न हो। ब्रह्म यदि केवल 'निमित्तकारण' हो, तो सब कार्योंके ब्रह्मसे भिन्न होनेसे एक विज्ञानसे सर्वविज्ञानका प्रतिपादन कैसे किया जा सकता है। इसलिए ब्रह्म निमित्तकारण है और उपादानकारण भी है।

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ॥ २३ ॥

पदच्छेद—प्रकृतिः, च, प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ।

पदार्थोक्ति—प्रकृतिश्च—उपादानकारणम्, निमित्तकारणमपि [ब्रह्म, कुतः] प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्—‘येनाश्रुतं श्रुतं भवति’ इत्यादिरेकविज्ञानेन सर्व-विज्ञानप्रतिज्ञा, ‘यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातम्’ इत्यादिदृष्टान्तश्च, तयोः सामञ्जस्यात् ।

भाषार्थ—ब्रह्म उपादानकारण है और निमित्तकारण भी है, क्योंकि ‘येना-श्रुतं०’ (जिसके ज्ञानसे अश्रुत श्रुत हो जाता है) इत्यादि एक विज्ञानसे सर्वविज्ञानकी प्रतिज्ञा और ‘यथा सोम्यैकेन०’ (हे सोम्य ! जैसे एक मृत्पिण्डके ज्ञानसे सब मृत्तिकाविकारका ज्ञान हो जाता है) इत्यादि दृष्टान्तका सामञ्जस्य है ।

भाष्य

यथाऽभ्युदयहेतुत्वाद् धर्मो जिज्ञास्य एवं निःश्रेयसहेतुत्वाद् ब्रह्म जिज्ञा-स्यमित्युक्तम्, ब्रह्म च ‘जन्माद्यस्य यतः’ (ब्र० १।१।२) इति लक्षितम् । तच्च लक्षणं घटरुचकादीनां मृत्सुवर्णादिवत् प्रकृतित्वे कुलालसुवर्णकारा-दिवन्निमित्तत्वे च समानमित्यतो भवति विमर्शः—किमात्मकं पुनर्ब्रह्मणः

भाष्यका अनुवाद

जैसे अभ्युदयका हेतु होनेसे धर्म जिज्ञास्य है, वैसे मोक्षका हेतु होनेसे ब्रह्म जिज्ञास्य है, ऐसा कहा है । ‘जन्माद्यस्य०’ सूत्रसे ब्रह्मका लक्षण कहा गया है । जैसे घट, रुचक आदिके मृत्तिका, सुवर्ण आदि उपादानकारण हैं और कुम्हार, सुनार आदि निमित्तकारण हैं, वैसे ही उस लक्षणसे ब्रह्म जगत्का उपादान-कारण है, यह भी प्रतीत होता है और निमित्तकारण है, यह भी । इससे

रत्नप्रभा

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा०। लक्षणसूत्रेण अस्य सङ्गतिं वक्तुं वृत्तं स्मारयति—यथेति । तत्र हि ब्रह्मणो बुद्धिस्थत्वार्थं सामान्यतो जगत्कारणत्वं लक्षणमुक्तम् तेन बुद्धिस्थे ब्रह्मणि कृत्स्नवेदान्तसमन्वयं प्रतिपाद्य तत्कारणत्वं किं कर्तृत्वमात्रम् उत प्रकृतित्व-

रत्नप्रभाका अनुवाद

ब्रह्मलक्षणसूत्रके साथ इस अधिकरणकी संगति दिखलानेके लिए पूर्वोक्तका स्मरण कराते हैं—“यथा” इत्यादिसे । इसमें प्रथम ब्रह्मके बुद्धिस्थ होनेके लिए सामान्य रीतिसे ब्रह्म जगत्का कारण है, ऐसा ब्रह्मका लक्षण किया गया है, उससे बुद्धिस्थ ब्रह्ममें समस्त

भाष्य

कारणत्वं स्यात्—इति । तत्र निमित्तकारणमेव तावत् केवलं स्यादिति प्रति-
भाति । कस्मात् ? ईक्षापूर्वककर्तृत्वश्रवणात् । ईक्षापूर्वकं हि ब्रह्मणः कर्तृ-
त्वमवगम्यते—‘स ईक्षांचक्रे (प्र० ६।३) ‘स प्राणमसृजत’ (प्र० ६।४)

भाष्यका अनुवाद

संशय होता है कि ब्रह्म जगत्का निमित्तकारण ही है अथवा उपादानकारण भी है ?
पूर्वपक्षी—ब्रह्म केवल निमित्तकारण है, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि ईक्षा-
पूर्वक ब्रह्म कर्ता है, ऐसी श्रुति है । ‘स ईक्षांचक्रे’ (उसने ईक्षण किया) ‘स प्राणम-
सृजत’ (उसने प्राणकी सृष्टि की) इत्यादि श्रुतियोंसे प्रतीत होता है कि ब्रह्म ईक्षा-

रत्नप्रभा

कर्तृत्वोभयरूपम् इति विशेषजिज्ञासायाम् इदमारभ्यते, तथा च सामान्यज्ञानस्य
विशेषचिन्ताहेतुत्वात् तेन अस्य सङ्गतिः । यद्यपि तदानन्तर्यम् अस्य युक्तम्, तथापि
निश्चिततात्पर्यैः वेदान्तैः कर्तृमात्रेश्वरमतनिरासः सुकर इति समन्वयान्ते इदं
लिखितम् । लक्षणसूत्रस्य अध्यायादिसङ्गतत्वाद् अस्यापि अध्यायादिसङ्गतिः । पूर्वत्र
सर्वविज्ञानप्रतिज्ञाया मुख्यत्वाद् वाक्यस्य जीवपरत्वं निरस्तम्, तदयुक्तम् कर्तृपादानयोः
भेदेन प्रतिज्ञाया गौणत्वाद् इत्याक्षिपति—तत्र निमित्तेत्यादिना । पूर्वोत्तरपक्षयोः
द्वैताद्वैतसिद्धिः फलम् । ईक्षापूर्वकेति । ईक्षणश्रुत्या कर्तृत्वं निश्चितम्, तथा च ब्रह्म
न प्रकृतिः, कर्तृत्वात्, यो यत्कर्ता स तत्प्रकृतिः न, यथा घटककर्ता कुलाल इत्यर्थः ।

रत्नप्रभाका अनुवाद

वेदान्तोंके समन्वयका प्रतिपादन करके ब्रह्म केवल कर्ता ही है अर्थात् निमित्तकारण ही है
या उपादान और निमित्तकारण दोनों है, इस तरह विशेष जिज्ञासा होनेपर इस अधिकरणका
आरंभ किया जाता है । सामान्यज्ञान विशेष विचारका हेतु है, अतः उसके साथ इस
अधिकरणकी संगति है । यद्यपि लक्षणसूत्रके अनन्तर यह अधिकरण देना युक्त था, तो
भी निश्चित तात्पर्यवाले वेदान्तोंसे ईश्वर निमित्तकारण ही हैं, इस मतका निराकरण करना
सहज समझकर समन्वयाध्यायके अन्तमें यह लिखा है । लक्षणसूत्रमें अर्थात् जन्माद्य-
धिकरणमें अध्याय आदि संगतियाँ हैं, अतः इस अधिकरणमें भी अध्याय आदि
संगतियाँ हैं । पूर्वाधिकरणमें सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा मुख्य होनेसे वाक्यमें जीवपरकत्वका निरास
किया गया है, वह युक्त नहीं है, क्योंकि कर्ता और उपादानके भिन्न भिन्न होनेसे
प्रतिज्ञा गौण है, ऐसा आक्षेप करते हैं—“तत्र निमित्त” इत्यादिसे । पूर्वपक्षमें द्वैत-
सिद्धि फल है, सिद्धान्तमें अद्वैतासिद्धि फल है । “ईक्षापूर्वक” इत्यादि । ईक्षणश्रुतिसे ब्रह्म
कर्ता है, ऐसा निश्चय होता है, इसलिए ब्रह्म प्रकृति नहीं, कर्ता होनेसे, जो जिसका कर्ता
होता है, वह उसकी प्रकृति नहीं होता है, जैसे घटका कर्ता कुम्हार, ऐसा भावार्थ है ।

भाष्य

इत्यादिश्रुतिभ्यः । ईक्षापूर्वकं च कर्तृत्वं निमित्तकारणेष्वेव कुलालादिषु दृष्टम् । अनेककारकपूर्विका च क्रियाफलसिद्धिलोके दृष्टा । स च न्याय आदिकर्तर्यपि युक्तः संक्रमयितुम् । ईश्वरत्वप्रसिद्धेश्च । ईश्वराणां हि राज-वैवस्वतादीनां निमित्तकारणत्वमेव केवलं प्रतीयते तद्वत् परमेश्वरस्यापि निमित्तकारणत्वमेव युक्तं प्रतिपत्तुम् । कार्यं चेदं जगत् सावयवमचेतनमशुद्धं च दृश्यते, कारणेनापि तस्य तादृशेनैव भवितव्यम्, कार्यकारणयोः सारूप्यदर्शनात् । ब्रह्म च नैवलक्षणमवगम्यते 'निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्' (श्वे० ६।१९) इत्यादिश्रुतिभ्यः । पारिशेष्याद् ब्रह्मणोऽन्य-

भाष्यका अनुवाद

पूर्वक कर्ता है । ईक्षापूर्वक कर्तृत्व कुम्हार आदि निमित्तकारणोंमें ही देखा जाता है । व्यवहारमें देखा जाता है कि क्रियाके फलकी सिद्धिके पूर्व अनेक कारण रहते हैं, उस न्यायका आदि कर्तामें भी संक्रमण करना युक्त है । और ईश्वरत्वकी प्रसिद्धिसे भी [ब्रह्म निमित्तकारण है], क्योंकि जैसे राजा वैवस्वत-मनु आदि लौकिक ईश्वर निमित्तकारण ही हैं, उसी प्रकार परमेश्वरको भी निमित्तकारण समझना युक्त है । और कार्यरूप यह जगत् अवयवयुक्त, अचेतन और अशुद्ध प्रतीत होता है, उसका कारण भी वैसा ही होना चाहिए, क्योंकि कार्य और कारण समान देखे जाते हैं । 'निष्कलं निष्क्रियं' (अवयवरहित, क्रियाशून्य, शान्त, दोषरहित और तमोरहित) इत्यादि श्रुतियोंसे ब्रह्म ऐसा

रत्नप्रभा

जगद् भिन्नकर्तृपादानकम्, कार्यत्वात्, घटवत्, इत्याह—अनेकेति । ब्रह्म नोपादानम्, ईश्वरत्वाद्, राजादिवत्, इत्याह—ईश्वरत्वेति । जगत् न ब्रह्मप्रकृतिकम्, तद्विलक्षणत्वाद्, यदित्थं तत्तथा कुलालविलक्षणघटवत्, इत्याह—कार्यञ्चेति । निष्कलम्—निरवयवम्, निष्क्रियम्—अचलम्, शान्तम्—अपरिणामि, निरवद्यम्—

रत्नप्रभाका अनुवाद

जगत् भिन्न कर्ता और उपादानवाला है, कार्य होनेसे, घटके समान, ऐसा दूसरा अनुमान बताते हैं—“अनेक” इत्यादिसे । ब्रह्म उपादानकारण नहीं है, ईश्वर होनेसे, राजा आदिके समान, ऐसा कहते हैं—“ईश्वरत्व” इत्यादिसे । जगत्का ब्रह्म उपादानकारण नहीं है, क्योंकि वह ब्रह्मसे विलक्षण है, जो कार्य जिस कारणसे विलक्षण होता है, उस कार्यका वह कारण उपादानकारण नहीं होता है अर्थात् वह कार्य तदुपादानक नहीं होता, कुम्हारसे विलक्षण घटके समान, ऐसा कहते हैं—“कार्यं च” इत्यादिसे । निष्कल-निरवयव । निष्क्रिय-अचल । शान्त-अपरि-

भाष्य

दुपादानकारणमशुद्ध्यादिगुणकं स्मृतिप्रसिद्धमभ्युपगन्तव्यम् । ब्रह्मकारण-
त्वश्रुतेर्निमित्तत्वमात्रे पर्यवसानादिति ।

एवं प्राप्ते ब्रूमः—‘प्रकृतिश्च’—उपादानकारणं च ब्रह्माभ्युपगन्तव्यं नि-
मित्तकारणं च । न केवलं निमित्तकारणमेव । कस्मात् ? प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरो-
धात् । एवं प्रतिज्ञादृष्टान्तौ श्रौतौ नोपरुध्येते । प्रतिज्ञा तावत्—‘उत तमादेशम-
प्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्’ (छा० ६।१।२) इति । तत्र
चैकेन विज्ञातेन सर्वमन्यदविज्ञातमपि विज्ञातं भवतीति प्रतीयते, तत्रोपादान-

भाष्यका अनुवाद

प्रतीत नहीं होता । अन्ततोगत्वा ब्रह्मसे अन्य, अशुद्धि आदि गुणवाला, स्मृतिमें प्रसिद्ध, उपादान कारण स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्म कारण है, ऐसा प्रतिपादन करनेवाली श्रुति निमित्तकारणमात्रमें पर्यवसित होती है ।

सिद्धान्ती—ऐसा प्राप्त होनेपर हम कहते हैं—ब्रह्मको प्रकृति अर्थात् उपा-
दानकारण और निमित्तकारण स्वीकार करना चाहिए, केवल निमित्तकारण ही नहीं । किससे ? प्रतिज्ञा और दृष्टान्तके अनुपरोधसे । ब्रह्मको उभयकारण माननेसे श्रुतिमें वर्णित प्रतिज्ञा और दृष्टान्त बाधित नहीं होते । ‘उत तमादेश-
मप्राक्ष्यो’ (तुमने गुरुसे वह उपदेश पूछा है ? जिससे अश्रुत श्रुत हो जाता है, मनन न किया हुआ मनन किया हुआ हो जाता है और अविज्ञात ज्ञात हो जाता है) यह प्रतिज्ञा है । उसमें एकका विज्ञान होनेसे सब अन्य जो अविज्ञात हैं, उनका भी विज्ञान हो जाता है, ऐसा समझा जाता है । यह सर्वविज्ञान उपादानकारणका

रत्नप्रभा

निरस्तसमस्तदोषम् । तत्र हेतुः—निरञ्जनमिति । अञ्जनतुल्यतमश्शून्यम्
इत्यर्थः । तर्हि जगतः सदृशोपादानं किम् इत्यत आह—पारिशेष्यादिति ।

ब्रह्मनिषेधे प्रधानं परिशिष्यते इति अभिमन्यमानः सिद्धान्तयति—प्रकृतिश्चेति ।
चकारात् निमित्तत्वग्रहः । एवम् उभयरूपे कारणत्वे तयोरबाधो भवति इत्याह—

रत्नप्रभाका अनुवाद

णामी । निरवयव—समस्तदोषरहित । समस्तदोषराहित्यमें हेतु कहते हैं—“निरञ्जनम्”—
काजल सदृश अन्धकारसे शून्य । तब जगत्का सदृश उपादान क्या है, उसके लिए कहते
हैं—“पारिशेष्यात्” इत्यादि ।

ब्रह्मका निषेध करनेसे प्रधान ही शेष रहता है, ऐसा समझकर सिद्धान्त करते हैं—
“प्रकृतिश्च” इत्यादिसे । ‘प्रकृतिश्च’ सूत्रमें चकारसे ब्रह्म निमित्तकारण है, ऐसा सूचित

भाष्य

कारणविज्ञाने सर्वविज्ञानं संभवत्युपादानकारणाव्यतिरेकात् कार्यस्य, निमित्तकारणाव्यतिरेकस्तु कार्यस्य नास्ति, लोके तक्षणः प्रासादव्यतिरेकदर्शनात् । दृष्टान्तोऽपि—‘यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्’ इत्युपादानकारणगोचर एवाऽऽम्नायते । तथा ‘एकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्यात्’ ‘एकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातं स्यात् (छा० ६।१।४,५,६) इति च । तथाऽन्यत्रापि ‘कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते

भाष्यका अनुवाद

विज्ञान होनेपर संभव है, क्योंकि कार्य उपादानकारणसे अभिन्न होता है । निमित्तकारणसे कार्य अभिन्न नहीं होता, क्योंकि लोकमें महल बनानेवाले बड़ईसे महल भिन्न देखनेमें आता है । ‘यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन०’ (हे सोम्य ! जैसे एक मृत्तिकापिण्डसे सब मृत्तिकाओंके विकारका विज्ञान हो जाता है, विकार नाममात्र है जिसका आरंभ केवल वाणीसे होता है, मृत्तिका ही सत्य है) । उसी प्रकार ‘एकेन लोहमणिना०’ (एक सुवर्णमय मणिसे सब सुवर्णविकारोंका विज्ञान हो जाता है) और ‘एकेन नखनिकृन्तनेन०’ (एक नहरनीसे सब लोहेके विकारका विज्ञान होता है) इस प्रकार दृष्टान्त भी उपादानकारणविषयक ही है । उसी प्रकार अन्य स्थलोंपर भी ‘कस्मिन्नु

रत्नप्रभा

एवमिति । कर्तृज्ञानादपि सर्वकार्यज्ञानं किं न स्याद् ? इत्यत आह—निमित्तकारणाव्यतिरेकस्त्विति । मृदादीनाम् उपादानानां दृष्टान्तत्वाद् दार्ष्टान्तिकस्य ब्रह्मण उपादानत्वं वाच्यमित्याह—दृष्टान्तोऽपीति । वागारभ्यं नाममात्रं विकारो न वस्तुतोऽस्तीति सत्यकारणज्ञानाद् विकारज्ञानं युक्तमित्यर्थः । गतिसामान्यार्थं मुण्डकेऽपि प्रतिज्ञादृष्टान्तौ आह—तथाऽन्यत्रापीति । बृहदारण्यकेऽपि तौ आह—

रत्नप्रभाका अनुवाद

होता है । प्रकृति और निमित्तकारण दोनों ब्रह्म है, ऐसा ग्रहण करनेसे प्रतिज्ञा और दृष्टान्तका बाध न होगा, ऐसा कहते हैं—‘एवम्’ इत्यादिसे । कर्ताके ज्ञानसे भी सर्वकार्यका ज्ञान क्यों न हो, इसपर कहते हैं—‘निमित्तकारणाव्यतिरेकस्तु’ इत्यादि । मृत्तिका आदि उपादानकारण दृष्टान्तरूपसे दिये गये हैं, इससे दार्ष्टान्तिक ब्रह्मको उपादान कारण ही कहना चाहिए, ऐसा कहते हैं—‘दृष्टान्तोऽपि’ इत्यादिसे । विकार वाणीसे आरंभ होने योग्य नाममात्र है, वास्तविक नहीं है, इससे सत्य कारणके ज्ञानसे विकारका ज्ञान होना युक्त है, ऐसा अर्थ है । उपनिषदोंकी सामान्य गति ऐसी है, यह दिखलानेके लिए मुण्डकमेंसे भी प्रतिज्ञा और

भाष्य

सर्वमिदं विज्ञातं भवति' (मु० १।१।२) इति प्रतिज्ञा, 'यथा पृथिव्या-
मोषधयः सम्भवन्ति' (मु० १।१।७) इति दृष्टान्तः, तथा 'आत्मनि
खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्' इति प्रतिज्ञा, 'स यथा
दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्यान् शब्दान् शक्नुयाद् ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु
ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः' (बृ० ४।५।६,८) इति
दृष्टान्तः । एवं यथासंभवं प्रतिवेदान्तं प्रतिज्ञादृष्टान्तौ प्रकृतित्वसाधनौ

भाष्यका अनुवाद

भगवो विज्ञाते०' (हे भगवन् ! किसका विज्ञान होनेपर इस सम्पूर्ण प्रपंचका
विज्ञान होता है) ऐसी प्रतिज्ञा है और 'यथा पृथिव्यामोषधयः०' (जैसे पृथिवीमें
ओषधियां उत्पन्न होती हैं) ऐसा दृष्टान्त है । इसी प्रकार 'आत्मनि खल्वरे
दृष्टे श्रुते०' (हे मैत्रेयि ! निश्चय आत्माका दर्शन, श्रवण, मनन और विज्ञान
होनेपर यह सब विदित होता है) ऐसी प्रतिज्ञा है । और 'स यथा दुन्दुभे-
र्हन्यमानस्य०' (जैसे नगाड़ेके बजनेपर बाह्य शब्द ग्रहण न किये जानेपर
मी दुन्दुभिके ग्रहणसे अथवा दुन्दुभिके आघातके ज्ञानसे शब्दविशेषका ग्रहण
किया जाता है) ऐसा दृष्टान्त है । इस प्रकार यथासंभव प्रत्येक वेदान्तमें

रत्नप्रभा

तथात्मनीति । घटः स्फुरति, पटः स्फुरति इत्यनुगतस्फुरणं प्रकृतिः, तदतिरेकेण
विकारा न सन्तीति सोऽयमर्थो यथा स्फुटः स्यात् तथा दृष्टान्तः स उच्यते ।
हन्यमानदुन्दुभिजन्यात् शब्दसामान्याद् बाह्यान् विशेषशब्दान् सामान्यग्रहणातिरेकेण
पृथग् गृहीतुं श्रोता न शक्नुयात्, सामान्यस्य तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातजशब्द-
विशेषो गृहीतो भवति, तस्य वा ग्रहणेन तदवान्तरविशेषशब्दो गृहीतो भवति,
अतः शब्दसामान्यग्रहणग्राह्या विशेषाः सामान्ये कल्पिताः, तद्वद् आत्मभानभास्याः

रत्नप्रभाका अनुवाद

दृष्टान्त उद्धृत करते हैं—“तथान्यत्रापि” इत्यादिसे । बृहदारण्यकमेंसे भी प्रतिज्ञा और
दृष्टान्त उद्धृत करते हैं—“तथात्मनि” इत्यादिसे । 'घटः स्फुरति' (घट ज्ञात होता है)
'पटः स्फुरति' (पट ज्ञात होता है) ऐसा अनुगत स्फुरण प्रकृति है, उससे अतिरिक्त
विकार नहीं है, इस अर्थको भली भाँति स्फुट करनेके लिए दृष्टान्त कहा जाता है । दुन्दुभिसे
उत्पन्न हुए शब्दसामान्यसे बाह्य विशेषशब्दोंको सामान्यशब्दसे भिन्नरूपसे पृथक्
सुननेके लिए श्रोता समर्थ नहीं हो सकता, किन्तु सामान्यशब्दके ग्रहणसे दुन्दुभिके
आघातसे उत्पन्न विशेष शब्दका ग्रहण होता है अथवा उसके ग्रहणसे उसके भीतरके

भाष्य

प्रत्येतव्यौ । यत इतीयं पञ्चमी 'यतो वा इमानि भूतान जायन्ते' इत्यत्र 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' (पा० सू० १।४।३०) इति विशेषस्मरणात् प्रकृतिलक्षण एवाऽपादाने द्रष्टव्या । निमित्तत्वं त्वधिष्ठात्रन्तराभावदाधिगन्तव्यम् । यथा हि लोके मृतसुवर्णादिकमुपादानकारणं कुलालसुवर्णकारादीनधिष्ठातृनपेक्ष्य प्रवर्तते, नैवं ब्रह्मण उपादानकारणस्य सतोऽन्योऽधिष्ठाताऽपेक्ष्योऽस्ति, प्रागुत्पत्तेरेकमेवाऽद्वितीयमित्यवधारणात् । अधिष्ठात्रन्तरा-

भाष्यका अनुवाद

उपादानकारण सिद्ध करनेवाले प्रतिज्ञा और दृष्टान्त समझने चाहिएँ । 'यतो वा इमानि०' (जिससे ये भूत उत्पन्न होते हैं) इसमें 'यतः' यह पंचमी 'जनिकर्तुः०' इस विशेष सूत्रका स्मरण होनेसे प्रकृतिलक्षण अपादानके अर्थमें ही समझनी चाहिए । ब्रह्मको निमित्तकारण तो अन्य अधिष्ठाताके न होनेसे समझना चाहिए । जैसे लोकमें मृत्तिका, सुवर्ण आदि उपादानकारण कुम्हार, सुनार आदि अधिष्ठाताओंकी अपेक्षा रखकर प्रवृत्त होते हैं, वैसे ब्रह्म उपादान होकर अन्य अधिष्ठाताकी अपेक्षा नहीं करता, क्योंकि उत्पत्तिके

रत्नप्रभा

घटादय आत्मनि कल्पिताः, इत्यर्थः । प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् लिङ्गाद् ब्रह्मणः प्रकृतित्वमुक्त्वा पञ्चमीश्रुत्याऽपि आह—यत इति । "यतो वा" इत्यत्र श्रुतौ यत इति पञ्चमी प्रकृतौ द्रष्टव्या इति अन्वयः । जनिकर्तुः—जायमानस्य कार्यस्य प्रकृतिः अपादानसंज्ञिका भवति इति सूत्रार्थः । संज्ञायाः फलम् "अपादाने पञ्चमी" (पा० २।३।२८) इति सूत्रात् प्रकृतौ पञ्चमीलाभः । एवं ब्रह्मणः प्रकृतित्वं प्रसाध्य कर्तृत्वं साधयति—निमित्तत्वमिति । ब्रह्म स्वातिरिक्तकर्त्रधिष्ठेयम्, प्रकृतित्वात्,

रत्नप्रभाका अनुवाद

विशेष शब्दका ग्रहण होता है । इसलिए जैसे शब्दसामान्यके ग्रहणसे प्राह्य विशेषशब्द सामान्यमें कल्पित हैं । उसी प्रकार आत्माके भानसे भास्य जो घट आदि पदार्थ हैं, वे आत्मामें कल्पित हैं, ऐसा समझना चाहिए । प्रतिज्ञा और दृष्टान्तके अनुसारी लिंगसे ब्रह्म उपादानकारण है, ऐसा कहकर पंचमी विभक्तिका श्रवण होनेसे भी ब्रह्म उपादान कारण है । ऐसा कहते हैं—'यतः' इत्यादिसे । 'यतो वा' इस मंत्रमें 'यतः' यह पंचमी प्रकृतिरूप अर्थमें है, ऐसा अन्वय है । "जनिकर्तुः" इत्यादि । जायमान कार्यकी प्रकृति अपादान संज्ञक होती है, ऐसा सूत्रका अर्थ है । संज्ञाके फलस्वरूप 'अपादाने०' सूत्रसे प्रकृतिके अनन्तर पञ्चमी विभक्ति आती है । इस प्रकार ब्रह्म प्रकृति है, यह सिद्ध करके वह कर्ता है, यह

भाष्य

भावोऽपि प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधादेवोदितो वेदितव्यः । अधिष्ठातरि
ह्युपादानादन्यस्मिन्नभ्युपगम्यमाने पुनरप्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानस्याऽसंभ-
वात् प्रतिज्ञादृष्टान्तोपरोध एव स्यात् । तस्मादधिष्ठात्रन्तराभावादात्मनः
कर्तृत्वमुपादानान्तराभावाच्च प्रकृतित्वम् ॥ २३ ॥

कुतश्चाऽऽत्मनः कर्तृत्वप्रकृतित्वे—

भाष्यका अनुवाद

पूर्व एक ही अद्वितीयका अवधारण है । अन्य अधिष्ठाताका अभाव भी प्रतिज्ञा
और दृष्टान्तके बाधके अभावसे ही कहा गया है, क्योंकि उपादानकारणसे अन्य
अधिष्ठाता स्वीकार किया जाय, तो एकविज्ञानसे सर्वविज्ञानका असंभव होनेसे
प्रतिज्ञा और दृष्टान्तका बाध ही हो जायगा । इसलिए अन्य अधिष्ठाताके अभावसे
आत्मा कर्ता है और अन्य उपादानके अभावसे आत्मा प्रकृति है ॥ २३ ॥

आत्मा निमित्तकारण और उपादानकारण कैसे है ?

रत्नप्रभा

मृदादिवद्, इत्याद्यनुमानानाम् आगमबाधमाह—प्रागुत्पत्तेरिति । जगत्कर्तृ
ब्रह्मैव इत्यत्रापि सूत्रं योजयति—अधिष्ठात्रन्तरेति ॥ २३ ॥

रत्नप्रभाका अनुवाद

सिद्ध करते हैं—“निमित्तत्वम्” इत्यादिसे । ब्रह्म अपनेसे अन्य कर्तासे अधिष्ठय है,
प्रकृति होनेसे, मृत्तिका आदिके समान, इत्यादि अनुमान शास्त्रसे बाधित हैं, ऐसा
कहते हैं—“प्रागुत्पत्तेः” इत्यादिसे । जगत्कर्ता ब्रह्म ही है, इसमें भी सूत्रकी योजना करते हैं—
“अधिष्ठात्रन्तर” इत्यादिसे ॥ २३ ॥

* यहाँ यह संशय होता है कि एकविज्ञानसे सर्वविज्ञानको बतलानेवाली श्रुति ब्रह्मको उपादान-
कारण कैसे सिद्ध कर सकती है ? क्योंकि जैसे लोकमें राजाको देखनेपर अमात्य आदि सब दृष्ट
ही हो जाते हैं, ऐसा व्यवहार होता है, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानसे सब कामनाओंकी प्राप्ति होनेसे
ब्रह्मके ज्ञानसे सब ज्ञात हो जाता है, ऐसा श्रुतिका अभिप्राय हो सकता है । कार्यकालमें कार्याभिन्न-
रूपसे कार्यमें अनुवर्तमान द्रव्य ही उपादानकारण होता है, मृत्पिण्ड तो घट आदिकी तरह मृत्का
अवस्थाविशेष है, वह घटमें अनुवर्तमान न होनेसे घटका उपादान नहीं हो सकता, इसलिये दृष्टान्त
भी नहीं घटता । अतः एकविज्ञानसे सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा और आत्मविज्ञानसे सर्वविज्ञानकथनसे ब्रह्ममें
उपादानता सिद्ध नहीं हो सकती । इसका उत्तर है—मृत्पिण्ड ही घट बनाया गया है, इस अबाधित
प्रतीतिसे मृत्पिण्ड घटका उपादान सिद्ध होता है । घटमें मृत्पिण्डकी अनुवृत्ति न होनेपर भी तदाश्रय
द्रव्यकी अनुवृत्ति है । यद्यपि राजाको देखनेसे अमात्य आदि दृष्ट हो जाते हैं, तो भी राजाको छाननेसे,
राजाके ज्ञानसे सब श्रुत एवं ज्ञात नहीं हो सकते हैं, अतः वह दृष्टान्त अन्यथासिद्ध है, इससे सिद्ध
होता है कि दृष्टान्त एवं एकविज्ञानसे सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा ब्रह्मको उपादान सिद्ध करती है ।

अभियोपदेशाच्च ॥ २४ ॥

पदच्छेद—अभियोपदेशात्, च ।

पदार्थोक्ति—अभियोपदेशाच्च—‘सोऽकामयत’ इत्यात्मनो ध्यानोपदेशात् कर्तृत्वम्, ‘बहु स्याम्’ इति ध्यानोपदेशात् प्रकृतित्वम् ।

भाषार्थ—श्रुतिमें ‘सोऽकामयत’ (उसने कामना की) इस प्रकारके ध्यानका उपदेश होनेसे आत्मा कर्ता अर्थात् निमित्तकारण है, ‘बहु स्याम्’ (मैं बहुत होऊँ) इस प्रकारके ध्यानका उपदेश होनेसे प्रकृति अर्थात् उपादानकारण है ।

भाष्य

अभियोपदेशश्चाऽऽत्मनः कर्तृत्वप्रकृतित्वे गमयति ‘सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति’ ‘तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय’ इति च । तत्राऽभिध्यानपूर्विकायाः स्वातन्त्र्यप्रवृत्तेः कर्तेति गम्यते, बहु स्यामिति प्रत्यगात्मविषयत्वाद् बहुभवनाभिध्यानस्य प्रकृतिरित्यपि गम्यते ॥ २४ ॥

भाष्यका अनुवाद

‘सोऽकामयत बहु स्यां०’ (उसने कामना की कि मैं बहुत होऊँ, प्रजारूपमें उत्पन्न होऊँ) और ‘तदैक्षत बहु स्यां०’ (उसने विचार किया कि मैं बहुत होऊँ, प्रजारूपमें उत्पन्न होऊँ) इस प्रकार सृष्टिसङ्कल्पके उपदेशसे प्रतीत होता है कि आत्मा निमित्तकारण और उपादानकरण भी है । उसमें सङ्कल्पपूर्वक स्वतंत्र प्रवृत्तिरूप कारणसे आत्मा निमित्तकारण प्रतीत होता है और ‘बहु स्याम्’ (बहुत होऊँ) इस प्रकार अनेक रूपमें उत्पन्न होनेका संकल्प आत्मा ही करता है, इससे प्रतीत होता है कि वह उपादानकरण भी है ॥ २४ ॥

रत्नप्रभा

एकस्य उभयरूपं कारणत्वम् अविरोद्धमिति सूत्रचतुष्टयेन साधयति—कुतश्चेत्यादिना । अभिध्या—सृष्टिसङ्कल्पः ॥ २४ ॥

रत्नप्रभाका अनुवाद

एक ही के निमित्तकारण और उपादानकारण होनेमें कोई विरोध नहीं है, यह चार सूत्रोंसे सिद्ध करते हैं—‘कुतश्च’ इत्यादिसे ।

अभिध्या—सृष्टिसंकल्प, अप्राप्तकी इच्छा—संकल्प है ॥ २४ ॥

साक्षाच्चोभयाम्नानात् ॥ २५ ॥

पदच्छेद—साक्षात्, च, उभयाम्नानात् ।

पदर्थोक्ति—साक्षाच्चोभयाम्नानात्—‘सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति’ इत्याकाशशब्देन साक्षादेव ब्रह्म गृहीत्वा जगदुत्पत्तिप्रलययोराम्नानात् [ब्रह्म निमित्तप्रकृती]

भाषार्थ—‘सर्वाणि ह वा इमानि०’ (ये सब भूत आकाशसे ही उत्पन्न होते हैं आकाशमें ही लीन होते हैं) इस प्रकार आकाशशब्दसे ब्रह्मका ग्रहण कर साक्षात् ही जगत्की उत्पत्ति और प्रलय कहे गये हैं । अतः ब्रह्म निमित्तकारण एवं उपादानकारण है ।

भाष्य

प्रकृतिवत्स्याज्यमभ्युच्चयः । इतश्च प्रकृतिर्ब्रह्म, यत्कारणं साक्षाद् ब्रह्मैव कारणमुपादायोभौ प्रभवप्रलयावाम्नायेते—‘सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति’ (छा०१।१।१) इति । यद्वि यस्मात् प्रभवति यस्मिंश्च प्रलीयते, तत् तस्योपादानं प्रसिद्धम् । यथा व्रीहियवादीनां पृथिवी । साक्षादिति चोपादानान्तरानुपादानं दर्शयत्याकाशादेवेति । प्रत्यस्तमयश्च नोपादानादन्यत्र कार्यस्य दृष्टः ॥ २५ ॥

भाष्यका अनुवाद

ब्रह्म प्रकृति है, इस विषयमें यह दूसरा हेतु है । इससे भी प्रकृति है, क्योंकि ‘सर्वाणि ह वा इमानि०’ (ये सब भूत आकाशसे उत्पन्न होते हैं और आकाशमें ही लीन होते हैं) इस श्रुतिमें साक्षात् ब्रह्मको ही कारण मान कर सृष्टि और प्रलय कहे गये हैं । यह प्रसिद्ध है कि जो जिससे उत्पन्न होता है और जिसमें लीन होता है, वह उसका उपादान है, जैसे धान, जौ, गेहूँ आदिका पृथिवी उपादान कारण है । श्रुतिस्थ ‘आकाशादेव’ के एवकारसे सूचित अन्य उपादानके अग्रहणको सूत्रकार साक्षात् पदसे सूचित करते हैं । कार्यका प्रलय भी उपादानसे अन्यमें नहीं दिखाई देता है ॥ २५ ॥

रत्नप्रभा

अभ्युच्चयः—हेत्वन्तरम् । आकाशादेव इत्येवकारसूचितम् उपादानान्तरानुपादानम् अग्रहणं साक्षात् इति पदेन सूत्रकारो दर्शयति इति योजना ॥२५॥

रत्नप्रभाका अनुवाद

अभ्युच्चय—अन्य हेतु । श्रुतिस्थ ‘आकाशादेव’ के एवकारसे सूचित अन्य उपादानके अग्रहणका सूत्रकार साक्षात् पदसे दिखाते हैं, ऐसी योजना करनी चाहिए ॥ २५ ॥

आत्मकृतेः परिणामात् ॥२६ ॥

पदच्छेद—आत्मकृतेः, परिणामात् ।

पदार्थोक्ति—आत्मकृतेः—‘तदात्मानं स्वयमकुरुत’ इत्यत्र आत्मसम्बन्धिन्याः कृतेः [आम्नानात् ब्रह्म निमित्तम् उपादानं च] परिणामात्—विवर्तात् [सिद्धस्यापि साध्यत्वमिति ब्रह्मणः कृतिकर्मत्वम्] ।

भाषार्थ—‘तदात्मानं०’ (उसने स्वयं अपना सृष्टिरूपसे निर्माण किया) इस श्रुतिमें आत्मसम्बन्धिनी कृति कही गई है, अतः ब्रह्म निमित्त है और उपादान भी है। सिद्ध वस्तु भी विवर्तरूपसे साध्य हो सकती है, अतः ब्रह्म कृतिका कर्म-विषय होता है।

भाष्य

इतश्च प्रकृतिर्ब्रह्म, यत्कारणं ब्रह्मप्रक्रियायाम् ‘तदात्मानं स्वयमकुरुत’ (तै० २।७) इत्यात्मनः कर्मत्वं कर्तृत्वं च दर्शयति, आत्मानमिति कर्मत्वम्, स्वयमकुरुतेति कर्तृत्वम् । कथं पुनः पूर्वसिद्धस्य सतः कर्तृत्वेन व्यवस्थितस्य क्रियमाणत्वं शक्यं संपादयितुम् । परिणामादिति ब्रूमः ।

भाष्यका अनुवाद

और इससे भी ब्रह्म प्रकृति है, क्योंकि ब्रह्मप्रक्रियामें ‘तदात्मानं०’ (उसने आत्माको सृष्टिरूपसे स्वयं रचा) इस श्रुतिमें आत्मा कर्म और कर्ता रूपसे दिखलाया गया है—‘आत्मानम्’ पदसे कर्म और ‘स्वयमकुरुत’ से कर्ता कहा गया है। परन्तु पूर्वसिद्ध एवं कर्तारूपसे व्यवस्थित पदार्थ क्रियाका विषय कैसे बनाया जा सकता है? परिणामसे बनाया जा सकता है, ऐसा हम कहते हैं।

रत्नप्रभा

आत्मसम्बन्धिनी कृतिः आत्मकृतिः, सम्बन्धश्च आत्मनः कृतिं प्रति विषयत्वम् आश्रयत्वञ्च । ननु कृतेः आश्रयः सिद्धो भवति विषयस्तु साध्यः इति एकस्य उभयं विरुद्धम् इत्याशङ्कते—कथं पुनरिति । यथा मृदः साध्यपरिणामामेदेन कृतिविषयत्वम्, तद्वद् आत्मन इत्याह—परिणामादिति । आत्मानमिति ।

रत्नप्रभाका अनुवाद

आत्मासे संबन्ध रखनेवाली कृति आत्मकृति है। कृतिके प्रति आत्माका संबन्ध तो विषयत्वरूप और आश्रयत्वरूप है अर्थात् आत्मा कृतिका विषय और आश्रय है। सिद्ध पदार्थ कृतिका आश्रय होता है और विषय साध्य होता है, इसलिए एक ही आत्मा कृतिका आश्रय और विषय है, यह विरुद्ध है, ऐसी आशंका करते हैं—“कथं पुनः” इत्यादिसे। जैसे मृत्तिका साध्य—परिणामसे अभिन्न रहकर कृतिका विषय होती है वैसे ही आत्मा भी कृतिका विषय

भाष्य

पूर्वसिद्धोऽपि हि सन्नात्मा विशेषेण विकारात्मना परिणमयामासाऽऽत्मान-
मिति । विकारात्मना च परिणामो मृदाद्यासु प्रकृतिषूपलब्धः, स्वय-
मिति च विशेषणान्निमित्तान्तरानपेक्षत्वमपि प्रतीयते । परिणामादिति वा
पृथक् सूत्रम् । तस्यैषोऽर्थः—इतश्च प्रकृतिर्ब्रह्म, यत्कारणं ब्रह्मण एव विकारा-

भाष्यका अनुवाद

आत्मा यद्यपि पूर्वसिद्ध है, तो भी उसने अपनेको विशेषविकाररूपसे परिणत
करियाँ । विकाररूपसे परिणाम मृत्तिका आदि उपादानकारणमें देखा जाता है ।
'स्वयम्' इस विशेषणसे प्रतीत होता है कि उसे अन्य निमित्तोंकी अपेक्षा नहीं
है । अथवा 'परिणामात्' इतना अंश पृथक् सूत्र है । उसका अर्थ यह
है—इससे भी ब्रह्म प्रकृति है, क्योंकि 'सच्च त्यच्चाभवत्०' (ब्रह्म ही प्रत्यक्ष और

रत्नप्रभा

अविरोध इति शेषः । सिद्धस्याऽपि साध्यत्वे दृष्टान्तमाह—विकारात्मनेति ।
ननु ब्रह्मण आत्मानमिति द्वितीयया कार्यात्मना साध्यत्वश्रुत्या अस्तु प्रकृतित्वम्,
कर्त्ता तु अन्योऽस्तु इत्यत आह—स्वयमिति चेति । ब्रह्मणः कृतिकर्मत्वोपपाद-
नार्थं परिणामाद् इति पदं व्याख्याय अन्यथापि व्याचष्टे—पृथक् सूत्रमिति ।
मृद्धट इतिवद् ब्रह्म सच्च त्यच्चेति परिणामसामानाधिकरण्यश्रुतेः ब्रह्मणः प्रकृति-

रत्नप्रभाका अनुवाद

है, ऐसा कहते हैं—“परिणामात्” इत्यादिसे । “आत्मानम्” इस वाक्यमें ‘अविरोधः’
(अविरोध है) इतना शेष समझना चाहिए । सिद्ध भी साध्य होता है, इस विषयमें दृष्टान्त
कहते हैं—“विकारात्मना” इत्यादिसे । यदि कोई कहे कि ‘आत्मानम्’ इस द्वितीयासे ब्रह्म
कार्यरूपसे साध्य होता है, ऐसा श्रुति कहती है, इससे ब्रह्म प्रकृति हो, कर्ता तो अन्य होना
चाहिए, इसपर कहते हैं—“स्वयमिति च” इत्यादि । ब्रह्म कृतिविषय है, इसके उपपादनके
लिए ‘परिणामात्’ इस पदका व्याख्यान करके अब अन्य प्रकारसे व्याख्यान करते हैं—“पृथक्
सूत्रम्” इत्यादिसे । आशय यह कि ‘मृद्धटः’ (घट मृत्तिका है) इसके समान ‘ब्रह्म सच्च त्यच्’
इस प्रकार ब्रह्मका परिणाम (जगत्) के साथ सामानाधिकरण्य श्रुतिमें कहा गया है, इससे ब्रह्म

(१) यहाँ शंका हो सकती है कि आत्मा कूटस्थ, अचल, अविकार है, ऐसा श्रुतिसे प्रतिपादित
है, तो यहाँ आत्माका परिणाम कैसे स्वीकार किया जा रहा है । यह युक्त नहीं है, क्योंकि
श्रुतिमें विकार मिथ्या कहा गया है, इसलिये विकारके मिथ्या होनेसे आत्माको निर्विकार कहनेवाली
श्रुतिसे कोई विरोध नहीं है, क्योंकि परिणामशब्द यहाँ विवर्तपरक है ।

भाष्य

त्मनाऽयं परिणामः सामानाधिकरण्येनाऽऽप्रायते 'सच्च त्यच्चाभवत् । निरुक्तं चानिरुक्तं च' (तै ० २।६) इत्यादिनेति ॥ २६ ॥

भाष्यका अनुवाद

परोक्ष, निर्वचन करने योग्य, निर्वचन करने अयोग्य सब पदार्थ हुआ) इत्यादिसे श्रुति ब्रह्मका ही विकारात्मामें परिणाम सामानाधिकरण्यसे दिखलाती है ॥ २६ ॥

रत्नप्रभा

त्वमित्यर्थः । सत्—प्रत्यक्षं भूतत्रयम् । त्यत्—परोक्षं भूतद्वयम्, निरुक्तम्—वक्तुं शक्यं घटादि, अनिरुक्तम्—वक्तुमशक्यं कपोतरूपादिकं च ब्रह्मैव अभवदित्यर्थः । अत्र सूत्रे परिणामशब्दः कार्यमात्रपरः, न तु सत्यकार्यात्मकपरिणामपरः तदनन्यत्वमिति विवर्तवादस्य वक्ष्यमाणत्वात् ॥ २६ ॥

रत्नप्रभाका अनुवाद

उपादानकारण है । सत्—प्रत्यक्ष तीन भूत—पृथिवी, जल और तेज, त्यत्—परोक्ष दो भूत—वायु और आकाश, निरुक्त—यह ऐसा, ऐसे निर्वचनके योग्य घट आदि, अनिरुक्त कहनेके अशक्य कपोतरूप आदि भी ब्रह्म ही हुआ, ऐसा अर्थ है । इस सूत्रमें परिणामशब्द कार्यमात्रवाचक है, सत्य कार्यात्मक परिणाम-वाचक नहीं है, क्योंकि 'तदनन्यत्वम्' इत्यादिसे विवर्तवाद कहा जानेवाला है ॥ २६ ॥

योनिश्च हि गीयते ॥ २७ ॥

पदच्छेद—योनिः, च, हि, गीयते ।

पदार्थोक्ति—हि—यस्माद्, योनिश्च—योनिरित्यपि गीयते—'यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति' इत्यत्र प्रकृतिवाचकयोनिशब्देनात्मा कथ्यते [तस्मात् ब्रह्म प्रकृतिरपि] ।

भाषार्थ—चूंकि 'यद्भूतयोनिं०' (धीर पुरुष जिसे भूतयोनि समझते हैं) इस श्रुतिमें प्रकृतिवाचक योनिशब्दसे आत्मा कहा गया है, इसलिए ब्रह्म उपादान-कारण भी है ।

भाष्य

इतश्च प्रकृतिर्ब्रह्म, यत्कारणं ब्रह्म योनिरित्यपि पठ्यते वेदान्तेषु 'कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्' (मु० ३।१।३) इति, 'यद्भूतयोनिं परि-

भाष्यका अनुवाद

और इससे भी ब्रह्म प्रकृति है, क्योंकि वह 'कर्तारमीशं०' (कर्ता, ईश, पुरुष, ब्रह्म और योनिको धीर पुरुष ध्यानसे देखते हैं) और 'यद्भूतयोनिं०' (जिसको

भाष्य

पश्यन्ति धीराः' (मु० १।१।६) इति च । योनिशब्दश्च प्रकृतिवचनः समधिगतो लोके 'पृथिवी योनिरोषधिवनस्पतीनाम्' इति । स्त्रीयोनेरप्यस्त्येवाऽवयवद्वारेण गर्भं प्रत्युपादानकारणत्वम् । क्वचित् स्थानवचनोऽपि योनिशब्दो दृष्टः—योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि' (ऋ० सं० १।१०।४।१) इति । वाक्यशेषात् त्वत्र प्रकृतिवचनता परिगृह्यते 'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च' (मु० १।१।७) इत्येवंजातीयकात् । तदेवं प्रकृतित्वं भाष्यका अनुवाद

विद्वान् भूतयोनि जानते हैं) इस प्रकार वेदान्तोंमें योनि कहा गया है । 'पृथिवी योनि०' (ओषधि और वनस्पतियोंकी योनि पृथिवी है) इत्यादि स्थलोंमें देखा जाता है कि व्यवहारमें योनिशब्द प्रकृतिवाचक माना जाता है । स्त्रीकी योनिमें भी अपने अवयव—शोणित द्वारा गर्भके प्रति उपादान कारणता है ही । 'योनिष्ट इन्द्र०' (हे इन्द्र ! तुम्हारे बैठनेके लिए मैंने स्थान बनाया है) इत्यादि किसी-किसी स्थलमें योनिशब्द स्थानवाचक भी है । और 'यथोर्णनाभिः०' (जैसे मकड़ी उत्पन्न करती है और ग्रहण करती है) इस प्रकारके वाक्य-

रत्नप्रभा

योनिशब्दाच्च प्रकृतित्वम् इत्याह—योनिश्चेति । कर्तारम्—क्रियाशक्ति-मन्तम्, ईशम्—नियन्तारम्, पुरुषम्—प्रत्यञ्चम्, ब्रह्म—पूर्णम्, योनिम्—प्रकृतिम्, धीरा ध्यानेन पश्यन्ति इत्यर्थः । ननु अनुपादानेऽपि स्त्रीयोनौ योनिशब्दो दृष्ट इत्यत आह—स्त्रीयोनेरिति । शोणितम् अवयवशब्दार्थः । योनिशब्दस्य स्थानमपि अर्थो भवति सोऽत्र भूतयोन्यादिशब्दैः न ब्राह्मः, ऊर्णनाभ्यादिप्रकृतदृष्टान्तवाक्यशेषविरोधाद् इत्याह—क्वचिदिति । हे इन्द्र ते—तव निषदे—उपवेशनाय योनिः—स्थानं मया अकारि—कृतमित्यर्थः । पूर्वपक्षोक्तानुमानानि

रत्नप्रभाका अनुवाद

और योनिशब्दसे भी ब्रह्म प्रकृति है, ऐसा कहते हैं—“योनिश्च” इत्यादिसे । कर्तारम्—क्रियाशक्तिवाले, ईशम्—नियन्ता, पुरुषम्—प्रत्यक्, ब्रह्म—पूर्णको योनि—उपादानकारण धीर पुरुष ध्यानसे देखते हैं । यदि कोई कहे कि स्त्रीकी योनिमें भी जो कि उपादानकारण नहीं है, योनिशब्दका प्रयोग देखा जाता है, इसपर कहते हैं—“स्त्रीयोनेः” इत्यादिसे । अवयवशब्दका अर्थ रक्त है । योनिशब्दका अर्थ स्थान भी होता है, 'भूतयोनि' इत्यादि शब्दमें वह अर्थ प्राह्य नहीं है, क्योंकि ऊर्णनाभि आदि प्रकृत दृष्टान्तप्रतिपादक वाक्यशेषसे विरोध है, ऐसा कहते हैं—“क्वचित्” इत्यादिसे । हे इन्द्र ! तुम्हारे बैठनेके लिए मैंने स्थान बनाया है, ऐसा अर्थ है । पूर्वपक्षी द्वारा कहे गये अनुमानोंका अनुवाद करके आगमसे उनका बाध कहते हैं—

भाष्य

ब्रह्मणः प्रसिद्धम् । यत्पुनरिदमुक्तम्—ईक्षापूर्वकं कर्तृत्वं निमित्तकारणेष्वेव कुलालादिषु लोके दृष्टं नोपादानेषु इत्यादि, तत् प्रत्युच्यते—न लोक-वदिह भवितव्यम्, नह्यमनुमानगम्योऽर्थः । शब्दगम्यत्वात् त्वस्याऽर्थस्य यथाशब्दमिह भवितव्यम् । शब्दश्चेक्षितुरीश्वरस्य प्रकृतित्वं प्रतिपादयती-त्यवोचाम । पुनश्चैतत् सर्वं विस्तरेण प्रतिवक्ष्यामः ॥ २७ ॥

भाष्यका अनुवाद

शेषसे यहां योनिशब्द प्रकृतिवाचक लिया जाता है । इस प्रकार ब्रह्म प्रकृति है, यह सिद्ध होता है । और ईक्षापूर्वक कर्तृत्व लोकमें कुम्हार आदि निमित्त कारणोंमें ही देखा जाता है, उपादानमें नहीं देखा जाता, इत्यादि जो पीछे कहा गया है, उसका निराकरण करते हैं—यहां लोकके समान न होना चाहिए, क्योंकि यह अर्थ अनुमानगम्य नहीं है, किन्तु शब्दगम्य है इससे शब्दके अनुसार ही अर्थ होना चाहिए । शब्द तो यह प्रतिपादन करता है कि ईक्षण करने-वाला ईश्वर प्रकृति है, ऐसा हम कह चुके हैं । और यह सब विस्तारसे आगे भी कहेंगे ॥ २७ ॥

रत्नप्रभा

अनूद्याऽऽगमबाधमाह—यत्पुनरित्यादिना । ननु अनुमानस्य श्रुत्यनपेक्षत्वान्न तथा बाध इत्यत आह—नहीति । जगत्कर्ता पक्षः श्रुत्यैव सिद्धयति, या कृतिः सा शरीरजन्येति व्याप्तिविरोधेन नित्यकृतिमतोऽनुमानासम्भवाद् अतः श्रौतमीश्वरम् पक्षीकृत्याऽनुपादानत्वसाधने भवत्येव उपजीव्यया प्रकृतित्वबोधकश्रुत्या बाध इत्यर्थः । यदुक्तं विलक्षणत्वाद् ब्रह्मणो न जगदुपादानत्वमिति, तत्राह—पुनश्चेति । “न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दाद्” (ब्र० सू० २।१।४) इत्यारभ्य इत्यर्थः । अत उभयरूपं कारणत्वं ब्रह्मणो लक्षणमिति सिद्धम् ॥ २७ ॥ (७) ॥

रत्नप्रभाका अनुवाद

“यत्पुनः” इत्यादिसे । यदि कोई कहे कि अनुमान श्रुतिकी अपेक्षा नहीं रखता है, इसलिये उसका श्रुतिसे बाध नहीं होता, इसपर कहते हैं—“नहि” इत्यादि । आशय यह है कि जगत्कर्तारूप पक्ष श्रुतिसे ही सिद्ध होता है क्योंकि जो कार्य है, वह शरीरजन्य है, इस व्याप्तिसे विशेष होनेके कारण अनुमानसे नित्य कृतिमानकी सिद्धि नहीं हो सकती, इससे श्रुति-प्रतिपादित ईश्वरको पक्ष करके उसमें अनुपादानत्वके अनुमानका उपजीव्य प्रकृतित्व-बोधक श्रुतिसे बाध होता है । यह जो कहा है कि विलक्षण होनेसे ब्रह्म जगत्का उपादानकारण नहीं हो सकता है, इसपर कहते हैं—“पुनश्च” इत्यादिसे । ‘न विलक्षण-त्वादस्य’ सूत्रसे आरंभ करके ऐसा अर्थ है । इससे सिद्ध हुआ कि उपादानकारणत्व एवं निमित्तकारणत्व ब्रह्मका लक्षण है ॥ २७ ॥

[८ सर्वव्याख्यानाधिकरण सू० २८]

अण्वादेरपि हेतुत्वं श्रुतं ब्रह्मण एव वा ।

वटधानादिदृष्टान्तादण्वादेरपि तच्छ्रुतम् ॥१॥

शून्याण्वादिष्वेकबुद्ध्या सर्वबुद्धिर्न युज्यते ।

स्युर्ब्रह्मण्यपि धानाद्यास्ततो ब्रह्मैव कारणम्* ॥२॥

[अधिकरणसार]

सन्देह—श्रुतिमें जगत्कारण अणु आदि भी कहे गये हैं या केवल ब्रह्म ही जगत्कारण कहा गया है ।

पूर्वपक्ष—श्रुतिमें वटबीज आदि दृष्टान्तरूपसे कहे गये हैं, इससे प्रतीत होता है कि अणु आदि भी जगत्कारण कहे गये हैं ।

सिद्धान्त—एकविज्ञानसे सर्वविज्ञान शून्यवाद, अणुवाद आदिमें उपपन्न नहीं हो सकता है । वटबीज आदि दृष्टान्त ब्रह्मके भी हो सकते हैं, इसलिए ब्रह्म ही जगत्कारण है ।

* तात्पर्य यह है—इस अधिकरणके विषय वेदान्त हैं । वेदान्तोंमें संशय होता है कि ब्रह्मके समान परमाणु, शून्य आदिमें भी कारणत्व कहा गया है अथवा सर्वत्र केवल ब्रह्म ही कारण कहा गया है ।

पूर्वपक्षी कहता है कि श्रुतिमें अणु आदि भी कारण कहे गये हैं, क्योंकि वटबीज आदि दृष्टान्तरूपसे कहे गये हैं । छान्दोग्यके छोटे अध्यायमें श्वेतकेतुके प्रति उपदेश देते हुए उद्दालकने सूक्ष्मतत्त्वमें स्थूल जगत्के अन्तर्भावका प्रतिपादन करनेके लिए महावृक्षगर्भित वटबीज दृष्टान्तरूपसे कहे हैं, इसलिए महाकार्यगर्भित परमाणु दार्ष्टान्तिकरूपसे श्रुतिमें कहे गये हैं । “असद्वा इदमग्र आसीत्” (यह सारा जगत् उत्पात्तिके पूर्वमें असत् ही था) यह श्रुति साक्षात् ही असत्को जगत्कारण बतलाती है । “स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथाऽन्ये” (कुछ लोग स्वभावको जगत्कारण कहते हैं, अन्य कुछ लोग समयको जगत्कारण कहते हैं) इस प्रकार श्रुतिमें स्वभाव तथा काल जगत्कारण कहे गये हैं । इसलिए परमाणु आदिमें जगत्कारणत्व श्रुतिसिद्ध ही है ।

सिद्धान्ती कहते हैं कि एकविज्ञानसे सर्वविज्ञान शून्य आदि मतोंमें उपपन्न नहीं होता है, क्योंकि ब्रह्मके शून्य आदिसे उत्पन्न न होनेके कारण शून्यके ज्ञानसे ब्रह्मका ज्ञान नहीं हो सकता है । वटबीज दृष्टान्त तो ब्रह्मके इन्द्रियागोचर होनेसे सूक्ष्म होनेके कारण ब्रह्मविषयक भी हो सकता है । असत् शब्दका अर्थ नाम रूपसे व्याकार न पाया हुआ है, ऐसा इस पादके चतुर्थ अधिकरणमें कह चुके हैं । श्रुतिमें स्वभावपक्ष और कालपक्ष पूर्वपक्षरूपसे कहे गये हैं । इससे सिद्ध होता है कि श्रुत्युक्त जगत्कारण ब्रह्म ही है, परमाणु आदि नहीं हैं ।

एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः ॥ २८ ॥

पदच्छेद—एतेन, सर्वे, व्याख्याताः, व्याख्याताः ।

पदार्थोक्ति—एतेन—प्रधाननिराकरणेन, सर्वे—अण्वसत्स्वभावादिकारण-वादाः, व्याख्याताः—निराकृतत्वेन व्याख्याताः । व्याख्याता इति पदाभ्यासोऽ-ध्यायपरिसमाप्त्यर्थः ।

भाषार्थ—प्रधानकारणवादके निराकरणसे अणु, असत् स्वभाव आदिको जगत्के कारण माननेवालोंके मत भी निराकृत समझने चाहिएँ । ‘व्याख्याताः’ इस पदका अभ्यास अध्यायसमाप्तिका द्योतक है ।

भाष्य

‘ईक्षतेर्नाशब्दम्’ (ब्र० सू० १।१।५) इत्यारभ्य प्रधानकारणवादः सूत्रैरेव पुनः पुनराशङ्क्य निराकृतः, तस्य हि पक्षस्योपोद्बलकानि कानि-चिल्लिङ्गाभासानि वेदान्तेष्वापातेन मन्दमतीन् प्रतिभान्तीति । स च कार्य-कारणानन्यत्वाभ्युपगमात् प्रत्यासन्नो वेदान्तवादस्य । देवलप्रभृतिभिश्च कैश्चिद् धर्मसूत्रकारैः स्वग्रन्थेष्वाश्रितः, तेन तत्प्रतिषेधे यत्नोऽस्तीव कृतो

भाष्यका अनुवाद

‘ईक्षतेर्नाशब्दम्’ सूत्रसे लेकर सूत्रों द्वारा ही बारंबार आशंका करके प्रधान कारणवादका निराकरण किया गया, क्योंकि मन्दमतियोंको उस पक्षके पोषक कुछ लिंगाभास वेदान्तोंमें साधारणरूपसे प्रतीत होते हैं । वह वाद कार्यकारणका अभेद स्वीकार करता है, इससे वेदान्तवादके अत्यन्त निकटवर्ती है । और देवल आदि कुछ धर्मसूत्रकारोंने अपने ग्रन्थोंमें उसको अवकाश दिया है । इसलिए उसके निराकरणके लिए बहुत यत्न किया गया, परन्तु

रत्नप्रभा

एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः । अस्य अतिदेशाधिकरणस्य तात्पर्यं वक्तुं वृत्तमनुवदति—ईक्षतेरिति । प्रधानवादस्य प्राधान्येन निराकरणे हेतूनाह-तस्य हीत्यादिना । तर्हि अण्वादिवादा उपेक्षणीया दुर्बलत्वादित्यत आह—

रत्नप्रभाका अनुवाद

इस अतिदेश अधिकरणका तात्पर्य कहनेके लिए वृत्तका अनुवाद करते हैं—“ईक्षतेः” इत्यादिसे । प्रधानवादका प्रधानतासे निराकरण करनेमें हेतु कहते हैं—“तस्य हि” इत्यादिसे । तब अणु आदि वादोंकी उपेक्षा करनी चाहिए, क्योंकि वे दुर्बल हैं, इसपर कहते हैं—“तेपि तु”

भाष्य

नाण्वादिकारणवादप्रतिषेधे । तेऽपि तु ब्रह्मकारणवादपक्षस्य प्रतिपक्षत्वात् प्रतिषेद्धव्याः । तेषामप्युपोद्बलकं वैदिकं किञ्चिल्लिङ्गभापातेन मन्दमतीन् प्रतिभायादिति । अतः प्रधानमल्लनिवर्हणन्यायेनाऽतिदिशति—एतेन प्रधानकारणवादप्रतिषेधन्यायकलापेन सर्वेऽण्वादिकारणवादा अपि प्रति-

भाष्यका अनुवाद

अणु आदि कारणवादके प्रतिषेधके लिए प्रयत्न नहीं किया गया । ब्रह्म कारणवादपक्षके प्रतिपक्षी होनेसे उनका भी प्रतिषेध करना चाहिए, क्योंकि कुछ वैदिक लिङ्ग मन्दमतियोंको आपाततः उनके पोषक प्रतीत हो सकते हैं । इसलिए प्रधानमल्लनिवर्हणन्यायसे अतिदेश करते हैं—इससे अर्थात् प्रधानकरणवादके

रत्नप्रभा

तेऽपि त्विति । निर्मूलास्ते कथं प्रतिपक्षा इत्यत आह—तेषामिति । तथाहि छान्दोग्ये जगत्कारणत्वज्ञापनार्थं पिता पुत्रमुवाच—आसां वटधानानां मध्ये एकां भिन्धीति, भिन्ना भगव इत्युवाच पुत्रः, पुनः पित्रा किमत्र पश्यसि इत्युक्ते, न किञ्चन भगव इत्याह, तत्र पित्राऽणिमानं न पश्यसि इत्युक्तम्, तथा च न किञ्चन शब्दात् शून्यस्वभाववादौ प्रतीयेते, अणुशब्दात् परमाणुवाद इति । एवम् “असदेवेदमग्र आसीद्” (छा० ३।१९।१) “अणोरणीयान्” (क० २।२०) इत्यादि लिङ्गं द्रष्टव्यम् । अत्र अण्वादिवादाः श्रौता न वेति संशये सति असदण्वादिशब्दबलात् श्रौता इति प्राप्तेऽतिदिशति—एतेनेति । अस्य अतिदेशत्वाद् न पृथक् सङ्गत्याद्यपेक्षा । नकिञ्चनाऽसच्छब्दयोः प्रत्यक्षायोग्यवस्तुपरत्वाद्

रत्नप्रभाका अनुवाद

इत्यादि । यदि कोई कहे कि वे वाद यदि निर्मूल हैं, तो प्रतिपक्ष किस प्रकार हो सकते हैं, इसपर कहते हैं—“तेषाम्” इत्यादि । क्योंकि छान्दोग्यमें जगत्के कारणको समझनेके लिए पिताने पुत्रसे कहा—इस बड़े फलके बीजोंमेंसे एक बीजको तोड़ो, पुत्रने कहा—हे भगवन् ! तोड़ लिया, फिर पिताने कहा—उसमें क्या देखते हो ? पुत्रने कहा—हे भगवन् ! ‘न किञ्चन’—कुछ नहीं, पीछे पिताने कहा—अणिमाको नहीं देखते ? इसमें ‘न किञ्चन’ शब्दसे शून्यवाद और स्वभाववादकी प्रतीति होती है और अणुशब्दसे परमाणुवाद प्रतीत होता है । इसी प्रकार ‘असदेवेदमग्र०’ (सृष्टिके पहले यह असत् ही था) ‘अणोरणीयान्’ (अणुसे भी अणु) इत्यादि लिंग समझने चाहिएँ । अणु आदि वाद श्रुतिसंगत हैं या नहीं, ऐसा संशय होनेपर श्रुतिमें असत्, अणु आदि पद हैं, इसलिए श्रौत हैं, ऐसा प्राप्त होनेसे अतिदेश करते हैं—“एतेन” इत्यादिसे । यह अतिदेश सूत्र है, अतः इसकी पृथक् संगति आदि कहनेकी अपेक्षा

भाष्य

षिद्धतया व्याख्याता वेदितव्याः । तेषामपि प्रधानवदशब्दत्वाच्छब्द-
विरोधित्वाच्चेति । व्याख्याता व्याख्याता इति पदाभ्यासोऽध्यायपरि-
समाप्तिं द्योतयति ॥२८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छङ्करभगवत्पूज्यपादकृतौ शारी-
रकमीमांसाभाष्ये प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥ ४ ॥

इति श्रीमद्ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्ये समन्वयाख्यः
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

भाष्यका अनुवाद

निषेधक न्यायोसे सब अणु आदि कारणवाद भी निराकृत समझने चाहिएँ,
क्योंकि वे भी प्रधानके समान अशब्द और शब्दविरुद्ध हैं । 'व्याख्याता व्या-
ख्याताः' इस प्रकार पदका अभ्यास अध्यायकी समाप्तिका सूचक है ॥ २८ ॥

यतिवर श्रीभोलेबाबा कृत प्रथम अध्यायके चतुर्थपादके
भाष्यका अनुवाद समाप्त ।

रत्नप्रभा

अणुशब्दस्य सूक्ष्माभिप्रायत्वाद् अशब्दत्वम्, तेषां वादानां प्रधानवादवद् अश्रौतत्वम्
ब्रह्मकारणश्रुतिबाधितत्वञ्च, तस्माद् ब्रह्मैव परमकारणम् । तस्मिन्नेव सर्वेषां वेदान्ता-
नां समन्वय इति सिद्धम् ॥ १ ॥ ४ ॥ २८ ॥ (८) ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्गोपालसरस्वतीपूज्यपादशिष्य-

श्रीरामानन्दभगवत्पादकृतौ शारीरकमीमांसादर्शन-

भाष्यव्याख्यायां भाष्यरत्नप्रभायां प्रथमाध्यायस्य

चतुर्थः पादः समाप्तः ॥ १ ॥ ४ ॥

रत्नप्रभाका अनुवाद

नहीं है । 'न किञ्चन' और 'असत्' शब्द प्रत्यक्षके अयोग्य वस्तुके प्रतिपादक हैं और अणुशब्द
सूक्ष्मपरक है, इसलिए 'अणु' आदि श्रुतिप्रतिपादित नहीं हैं और ये वाद प्रधानवादके समान
अश्रौत हैं और ब्रह्म कारण है, ऐसा प्रतिपादन करनेवाली श्रुतिसे बाधित हैं, इसलिए ब्रह्म ही परम
कारण है और उसमें ही सब वेदान्तोंका समन्वय है, यह सिद्ध हुआ ॥२८॥

यतिवर श्रीभोलेबाबा कृत प्रथमाध्यायके चतुर्थ पादका रत्नप्रभाानुवाद समाप्त ।

ब्रह्मसूत्र

[शाङ्करभाष्य-रत्नप्रभा-भाषानुवादसहित]

द्वितीयोऽध्यायः ।

(द्वितीये अविरोधाख्याध्याये प्रथमपादे साङ्ख्ययोगकाणादादिस्मृतिभिः
साङ्ख्यादिप्रयुक्तकैश्च वेदान्तसमन्वयविरोधपरिहारः)

[१ स्मृत्यधिकरण सू० १—२]

साङ्ख्यस्मृत्याऽस्ति संकोचो न वा वेदसमन्वये । धर्मं वेदः सावकाशः संकोचो न वकाशया ॥
प्रत्यक्षश्रुतिमूलाभिर्मन्वादिस्मृतिभिः स्मृतिः। अमूला कापिली बाध्या न संकोचोनया ततः ॥

[अधिकरणसार]

सन्देह—वेदसमन्वयका सांख्यस्मृतिसे संकोच होता है या नहीं ?

पूर्वपक्ष—वेद धर्ममें सावकाश है, अतः निरवकाश सांख्यस्मृतिसे वेदका संकोच होना युक्त है ।^१

सिद्धान्त—प्रत्यक्ष श्रुतिमूलक मनु आदि स्मृतियोंसे मूलश्रुतिरहित कापिल स्मृतिका बाध होता है, इसलिए सांख्यस्मृतिसे वेदका संकोच युक्त नहीं है ।

तात्पर्य यह है कि इस पादके सब अधिकरणोंका पूर्वाध्यायमें वर्णित समन्वय विषय है । यहाँपर सन्देह किया जाता है कि उक्त वेदसमन्वयका सांख्यस्मृतिसे संकोच होता है या नहीं ?

पूर्वपक्षी कहता है कि संकोच होना युक्त है, क्योंकि सांख्यस्मृति निरवकाश होनेसे प्रबल है । सांख्यस्मृति केवल वस्तुतत्त्वका निरूपण करनेके लिए ही प्रवृत्त हुई है, कहींपर भी अनुष्ठेय धर्मका प्रतिपादन नहीं करती है । यदि वह वस्तुतत्त्व प्रतिपादनमें भी बाधित हो जाय तो निरवकाश हो जायगी । वेद धर्म और ब्रह्म दोनोंका निरूपण करता है । ब्रह्मके विषयमें बाधित होनेपर भी धर्ममें वह सावकाश है । इसलिए निरवकाश स्मृतिसे सावकाश वेदका संकोच होना ठीक है ।

सिद्धान्ती कहते हैं कि सांख्यस्मृति ब्रह्मको जगत्कारण माननेवाली मनु आदि स्मृतियोंसे बाधित है । मनु आदि स्मृतियाँ प्रत्यक्षवेदमूलक होनेसे प्रबल हैं । प्रधानको जगत्कारण माननेवाली सांख्यस्मृतिकी मूलभूत कोई श्रुति नहीं दिखाई देती है, क्योंकि परिवृद्ध्यमान वेदवाक्य ब्रह्मपरक हैं, ऐसा पहले ही निर्णय किया जा चुका है । इसलिए सांख्यस्मृतिसे वेदका संकोच होना ठीक नहीं है ।

भाष्य

प्रथमेऽध्याये सर्वज्ञः सर्वेश्वरो जगत् उत्पत्तिकारणं मृतसुवर्णादय इव घटरुचकादीनाम्, उत्पन्नस्य जगतो नियन्तृत्वेन स्थितिकारणम्,

भाष्यका अनुवाद

जैसे मृत्तिका सुवर्ण आदि घट, रुचक आदिके कारण हैं, वैसे ही सर्वज्ञ, सर्वेश्वर जगत् की उत्पत्तिका कारण है, जैसे मायावी मायाका नियन्तारूपसे स्थितिकारण है, वैसे ही सर्वज्ञ सर्वेश्वर नियन्तारूपसे उत्पन्न हुए जगत्का

रत्नप्रभा

सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायऽक्लिष्टकारिणे ।

नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ १ ॥

साङ्ख्यादिस्मृतियुक्तिभिर्न चलितो वेदान्तसिद्धान्तगो

निर्मूलैर्विधागमैरविदितो व्योमादिजन्माप्ययः ।

उत्पत्त्यन्तविवर्जितश्चितिवपुर्व्यापी च कर्ताशको

लिङ्गेन प्रथितोऽपि नामतनुकृत् तं जानकीशं भजे ॥ २ ॥

“नामरूपे व्याकरणवाणि” इति श्रुतेः नामतनुकृदपि संज्ञामूर्तिव्याकर्ताऽपि लिङ्गशरीरोपाधिना कर्तेति अंश इति च प्रथितः प्रसिद्धो यः तं प्रत्यगभिन्नं परमात्मानं मूलप्रकृतिनियन्तारं भजे इत्यर्थः । स्मृतिप्रसङ्गात् पूर्वोत्तराध्याययोः विषयविषयिभावसङ्गतिं वक्तुं वृत्तं कीर्तयति—प्रथमेऽध्याय इति । जन्मादिसूत्रमारभ्य जगदुत्पत्त्यादिकारणं ब्रह्मेति प्रतिपादितम्, “शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत्”

रत्नप्रभाका अनुवाद

केवल उपनिषदांसे ज्ञात होनेवाले, बुद्धिके साक्षी, सुखदायक, अन्धकारनिवर्तक, सच्चिदानन्दस्वरूप कृष्णके लिए प्रणाम है ॥१॥

सांख्य आदि स्मृतियाँ और युक्तियाँ जिसके स्वरूपको अन्यथा नहीं कर सकतीं, जो केवल वेदान्तसिद्धान्तसे ज्ञात होता है, अनेक प्रकारके अवैदिक शास्त्र जिसका प्रतिपादन नहीं कर सकते, आकाश आदि जगत्के जन्म और नाशका हेतु, जन्म-मरणरहित, ज्ञानस्वरूप, व्यापक, ‘नामरूपे व्याकरणवाणि’ इस श्रुतिके अनुसार स्वयं नाम और रूपका स्पष्टीकरण करनेवाला होनेपर भी लिङ्गशरीररूप उपाधिसे कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदिसे विशिष्ट और परमात्माके अंशके समान भासनेवाले, मूलप्रकृतिके नियन्ता प्रत्यगभिन्न उस परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥ पूर्व और उत्तर अध्यायका विषयविषयिभाव संबन्ध दिखलानेके लिए पूर्वोक्तका अनुवाद करते हैं—“प्रथमेऽध्याये” इत्यादिसे । जन्मादि सूत्रसे लेकर ब्रह्म जगत्की उत्पत्ति आदिका कारण है, ऐसा प्रतिपादन किया जा चुका है, ‘शास्त्र-दृष्ट्या’ इत्यादि सूत्रोंसे वही अद्वितीय ब्रह्म

भाष्य

मायावीव मायायाः । प्रसारितस्य जगतः पुनः स्वात्मन्येवोपसंहारकारणम्
अवनिरिष चतुर्विधस्य भूतग्रामस्य । स एव च सर्वेषां न आत्मेत्येतद्
वेदान्तवाक्यसमन्वयप्रतिपादनेन प्रतिपादितम् । प्रधानादिकारणवादा-
श्चाऽऽशब्दत्वेन निराकृताः । इदानीं स्वपक्षे स्मृतिन्यायविरोधपरिहारः,

भाष्यका अनुवाद

स्थितिकारण है और जैसे पृथिवी जरायुज आदि चार प्रकारके प्राणियोंका
अपनेमें उपसंहार कर लेती है, वैसे ही सर्वज्ञ सर्वेश्वर विस्मृत जगत्का अपनेमें
उपसंहार कर लेता है, इसलिए उपसंहारकारण है। वही (सर्वज्ञ सर्वेश्वर) हम
सबका आत्मा है, ऐसा प्रथम अध्यायमें वेदान्तवाक्योंके समन्वय-प्रतिपादनद्वारा
कहा जा चुका है और प्रधान आदिको जगत्कारण माननेवालोंके मतका, श्रुतिमें
प्रतिपादन न होनेसे, खण्डन किया गया है। अब अपने पक्षमें स्मृति और

रत्नप्रभा

(ब्र० सू० १।१।३१) इत्यादिसूत्रेषु, स एव अद्वितीयः सर्वात्मा इत्युक्तम्,
“आनुमानिकमप्येकेषाम्” (ब्र० सू० १।४।१) इत्यादिना कारणान्तरस्य
अश्रौतत्वं दर्शितमित्यर्थः । एवं प्रथमाध्यायस्य अर्थमनूद्य तस्मिन् विषये विरोध-
परिहारविषयिणं द्वितीयाध्यायस्य अर्थं पादशः संक्षिप्य कथयति—इदानीमिति ।
अत्र प्रथमपादे समन्वयस्य साङ्ख्यादिस्मृतियुक्तिभिः विरोधपरिहारः
क्रियते । द्वितीयपादे सांख्याद्यागमानां भ्रान्तिमूलत्वम् अविरोधाय कथ्यते ।
तृतीये पादे प्रतिवेदान्तं सृष्टिश्रुतीनां जीवात्मश्रुतीनां च व्योमादिमहाभूतानां
जन्मलयक्रमादिकथनेन अविरोधः प्रतिपाद्यते । चतुर्थपादे लिङ्गशरीरश्रुतीनाम्

रत्नप्रभाका अनुवाद

सबका आत्मा है, ऐसा प्रातपादन किया गया है और ‘आनुमानिक०’ इत्यादिसे ब्रह्मभिन्न
कारण श्रुतिप्रतिपादित नहीं है, ऐसा दिखलाया गया है। इस प्रकार प्रथम अध्यायके अर्थका
अनुवाद करके उसी अर्थके विरोधका परिहार करनेवाले द्वितीय अध्यायके अर्थका पादके
क्रमानुसार संक्षेपसे वर्णन करते हैं—“इदानीम्” इत्यादिसे। श्रुतियोंका जो ब्रह्ममें समन्वय किया
गया है उसमें सांख्य आदि स्मृतियों और युक्तियोंसे जो विरोध उपस्थित होता है, उसका इस
अध्यायके प्रथम पादमें परिहार करते हैं। द्वितीय पादमें अविरोध दिखलानेके लिए सांख्य आदि
शास्त्र भ्रान्तिमूलक है, ऐसा प्रतिपादन किया है। तृतीय पादमें प्रतिवेदान्तमें सृष्टिश्रुतियों और
जीवात्मश्रुतियों व्योम आदि भूतोंका जन्म, लयक्रम आदि कहती हैं, इससे उनका अविरोध है,
ऐसा दिखलाया है। इसके चतुर्थ पादमें लिङ्गशरीरश्रुतियोंका अविरोध प्रतिपादन किया है।

भाष्य

प्रधानादिवादानां च न्यायाभासोपबृंहितस्त्वम्, प्रतिवेदान्तं च सृष्ट्या-
दिप्रक्रियाया अविगीतत्वमित्यस्याऽर्थजातस्य प्रतिपादनाय द्वितीयोऽध्याय
आरभ्यते । तत्र प्रथमं तावत् स्मृतिविरोधमुपन्यस्य परिहरति—

भाष्यका अनुवाद

न्यायके विरोधका परिहार, प्रधान आदि कारणवादोंकी भ्रान्तिमूलकता और
उपनिषदोंमें उक्त सृष्टि आदि प्रक्रियाका अविरोध इत्यादि विषयोंका प्रतिपादन
करनेके लिये दूसरा अध्याय आरंभ किया जाता है । इनमेंसे सबसे पहले स्मृति-
विरोधका उपन्यास करके परिहार करते हैं—

रत्नप्रभा

अविरोध इत्यर्थः । अयमेवार्थः सुखबोधार्थं श्लोकेन संगृहीतः—

‘द्वितीये स्मृतितर्काभ्यामविरोधोऽन्यदुष्टता ।

भूतभोक्तृश्रुतेर्लिङ्गश्रुतेरप्यविरुद्धता ॥ १ ॥’ इति ।

तत्र अज्ञाते विषये विरोधशङ्कासमाध्ययोगात् समन्वयाध्यायानन्तर्यम् अवि-
रोधाध्यायस्य युक्तम् । तत्र प्रथमाधिकरणस्य तात्पर्यमाह—तत्र प्रथममिति ।

रत्नप्रभाका अनुवाद

यही विषय सुखपूर्वक ज्ञात होनेके लिए ‘द्वितीये स्मृतितर्काभ्या०’ (द्वितीय अध्यायमें स्मृति
और तर्कसे श्रुतिका अविरोध, अन्य मतोंकी असाधुता, सृष्टिश्रुति, जीवश्रुति और
लिङ्गशरीरश्रुतियोंका अविरोध कहा गया है) इस श्लोकमें संगृहीत है । अज्ञात अर्थमें विरोधकी
शंका या समाधान युक्त नहीं है, इसलिए समन्वयाध्यायके अनन्तर अविरोधाध्यायका कथन
युक्त है । इसमें प्रथम अधिकरणका तात्पर्य कहते हैं—“तत्र प्रथमम्” इत्यादिसे ।

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोष-
प्रसङ्गात् ॥ १ ॥

पदच्छेद—स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गः, इति, चेत्, न, अन्यस्मृत्यनवकाश-
दोषप्रसङ्गात् ।

पदार्थोक्ति—स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गः—महर्षिप्रणीतप्रधानकारणवाद-
स्मृतीनामनवकाशरूपदोषप्रसङ्गात् समन्वयो विरुध्यते, इति चेत्, न—न समन्वयो
विरुध्यते, [कुतः] अन्यस्मृत्यनवकाशरूपदोषप्रसङ्गात्—चेतनकारणवादिनी-
नामन्यासां स्मृतीनामनवकाशरूपदोषप्रसङ्गात् [श्रुत्यविरुद्धस्मृतिविरुद्धत्वात्
साङ्ख्यस्मृतिरप्रमाणम्] ।

भाषार्थ—महर्षिद्वारा रचित प्रधानको जगत्कारण कहनेवाली स्मृतियाँ व्यर्थ हो जायँगी, अतः वेदान्तोंका ब्रह्ममें समन्वय नहीं हो सकता है, ऐसा यदि कहो, तो ब्रह्ममें वेदान्तोंका समन्वय होनेमें कोई विरोध नहीं है। क्योंकि अचेतन प्रधानको कारण माननेपर चेतनको जगत्कारण कहनेवाली स्मृतियाँ निरर्थक हो जायँगी, अतः श्रुतिमूलक स्मृतियोंसे विरुद्ध होनेके कारण सांख्यस्मृति अप्रमाण है।

भाष्य

यदुक्तम्—ब्रह्मैव सर्वज्ञं जगतः कारणम् इति, तदयुक्तम् । कुतः ? स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् । स्मृतिश्च तन्त्राख्या परमर्षिप्रणीता शिष्टपरिगृहीता, अन्याश्च तदनुसारिण्यः स्मृतयः, ता एवं सत्यनवकाशाः

भाष्यका अनुवाद

पूर्वपक्षी—सर्वज्ञ ब्रह्म ही जगत्का कारण है, ऐसा जो पीछे कहा गया है, वह युक्त नहीं है। किससे ? स्मृतिके अनवकाशरूप दोषके प्रसङ्गसे। ऐसी अवस्थामें परम ऋषि द्वारा निर्मित और शिष्ट पुरुषों द्वारा स्वीकृत कपिलस्मृति

रत्नप्रभा

श्रुते समन्वये विरोधनिरासार्थत्वादस्य पादस्य श्रुतिशास्त्राध्यायसङ्गतयः । स्वमतस्थापनात्मकत्वात् सर्वेषामधिकरणानामेतत्पादसङ्गतिः । अत्र पूर्वपक्षे स्मृतिविरोधाद् उक्तसमन्वयासिद्धिः फलम्, सिद्धान्ते तत्सिद्धिरिति विवेकः । तत्र ब्रह्मणि उक्तवेदान्तसमन्वयो विषयः । स किं सांख्यस्मृत्या विरुध्यते न वेति स्मृतिप्रामाण्याप्रामाण्याभ्यां सन्देहे पूर्वपक्षमाह—यदुक्तमिति । तन्व्यन्ते व्युत्पाद्यन्ते तत्त्वानि अनेनेति तन्त्रम्—शास्त्रं कपिलोक्तम्, अन्याश्च पञ्चशिखादिभिः प्रोक्ताः, एवं सति वेदान्तानामद्वयब्रह्मसमन्वये निरर्थकाः स्युरित्यर्थः । तासामपि

रत्नप्रभाका अनुवाद

श्रुतियोंके समन्वयमें होनेवाले विरोधका इस पादमें परिहार किया जाता है, अतः श्रुति-संगति, शास्त्रसंगति और अध्यायसंगतियाँ हैं। इस पादके सब अधिकरणोंसे अपने मतकी स्थापना की गई है, इसलिए सब अधिकरणोंमें पादसंगति है। यहाँ पूर्वपक्षमें स्मृतिविरोधसे पूर्वाध्यायोक्त समन्वयकी असिद्धि फल है, सिद्धान्तमें समन्वयकी सिद्धि फल है, ऐसा समझना चाहिए। यहाँ ब्रह्ममें उक्त वेदान्तोंका जो समन्वय है, वह विषय है। वह सांख्यस्मृतिसे विरुद्ध होता है या नहीं, ऐसा स्मृतिके प्रामाण्य और अप्रामाण्यमें संशय होनेपर पूर्वपक्ष करते हैं—“यदुक्तम्” इत्यादिसे। जिसके द्वारा तत्त्वोंकी व्युत्पत्ति दिखलाई जाय, वह तन्त्र—कपिलका रचा हुआ शास्त्र। अन्य—आसुरि, पञ्चशिख आदिसे रची गई स्मृतियाँ। ‘एवं सति’ अर्थात् वेदान्तोंका अद्वितीय ब्रह्ममें समन्वय हो, तो निरर्थक हो जायँगी। यदि

भाष्य

प्रसज्येरन् । तासु ह्यचेतनं प्रधानं स्वतन्त्रं जगतः कारणमुपनिबध्यते । मन्वादिस्मृतयस्तावच्चोदनालक्षणेनाऽग्निहोत्रादिना धर्मजातेनाऽपेक्षितमर्थं समर्पयन्त्यः सावकाशा भवन्ति । अस्य वर्णस्याऽस्मिन् कालेऽनेन विधाने-
नोपनयनम्, ईदृशश्चाऽऽचारः इत्थं वेदाध्ययनम्, इत्थं समावर्तनम्,
इत्थं सहधर्मचारिणीसंयोग इति । तथा पुरुषार्थाश्चतुर्वर्णाश्रमधर्मान्
नानाविधान् विदधति । नैवं कपिलादिस्मृतीनामनुष्ठेये विषयेऽवकाशोऽस्ति ।
मोक्षसाधनमेव हि सम्यग्दर्शनमधिकृत्य ताः प्रणीताः । यदि तत्राप्य-

भाष्यका अनुवाद

और तदनुसारिणी दूसरी स्मृतियाँ निरर्थक हो जायँगी, क्योंकि उनमें अचेतन प्रधान जगत् का स्वतंत्ररूपसे कारण कहा गया है । चोर्दनालक्षण अग्नि-
होत्र आदि धर्मसमूहसे अपेक्षित अर्थका बोध करानेवाली मनु आदि स्मृतियाँ तो सार्थक हैं, क्योंकि वे अमुक वर्णका अमुक कालमें अमुक विधानसे उप-
नयन होता है, अमुक वर्णका अमुक आचार, अमुक रीतिसे वेदका अध्ययन, समावर्तन, विवाह होता है, ऐसा [बोध कराती हैं] । उसी प्रकार पुरुषार्थभूत नाना प्रकारके वर्णाश्रम धर्मका विधान करती हैं । कपिल आदि स्मृतियाँ इस प्रकार अनुष्ठानयोग्य विषयमें सावकाश नहीं हैं, क्योंकि मोक्षके साधन तत्त्वज्ञानके उद्देशसे ही उनकी रचना हुई है । यदि उसमें भी वे अवकाशरहित

रत्नप्रभा

ब्रह्मार्थकत्वम् अस्तीति अविरोध इत्यत आह—तासु हीति । ननु सांख्यस्मृति-
प्रामाण्याय प्रधानवादग्रहे मन्वादिस्मृतीनाम् अप्रामाण्यं स्यादित्याशङ्क्य तासां
धर्मे सावकाशत्वात् प्रामाण्यं स्यादित्याह—मन्वादीति । तर्हि सांख्यादि-
स्मृतीनामपि धर्मे तात्पर्येण प्रामाण्यमस्तु, तत्त्वं तु ब्रह्मैवेति अविरोध इत्यत आह—
नैवमिति । तत्त्वे विकल्पनानुपपत्तेः निरवकाशस्मृत्यनुसारेण श्रुतिव्याख्यानम्

रत्नप्रभाका अनुवाद

कोई कहे कि उन स्मृतियोंमें भी ब्रह्म ही प्रतिपादित है, इसलिए विरोध नहीं है, तो इसपर कहते हैं—“तासु हि” इत्यादि । सांख्यस्मृतिको प्रमाण माननेके लिए यदि प्रधानकारणवादका स्वीकार करें तो मनु आदि स्मृतियाँ अप्रमाण हो जायँगी, ऐसी आशंका करके वे स्मृतियाँ धर्मका प्रतिपादन करती हैं, इसलिए सावकाश होनेके कारण प्रमाण हैं, ऐसा कहते हैं—“मन्वादि” इत्यादिसे । तब सांख्यस्मृतिका भी धर्ममें तात्पर्य मानकर प्रमाण मानो, तत्त्व तो ब्रह्म ही है, इसलिए कोई विरोध नहीं है, इसपर कहते हैं—“नैवम्” इत्यादि । तत्त्वमें विकल्प नहीं हो

भाष्य

नवकाशाः स्युः, अनर्थक्यमेवासां प्रसज्येत । तस्मात् तदविरोधेन वेदान्ता व्याख्यातव्याः । कथं पुनरीक्षत्यादिभ्यो हेतुभ्यो ब्रह्मैव सर्वज्ञं जगतः कारणमित्यवधारितः श्रुत्यर्थः स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गेन पुनराक्षिप्यते ? भवेदयमनाक्षेपः स्वतन्त्रप्रज्ञानाम् । परतन्त्रप्रज्ञास्तु प्रायेण जनाः स्वातन्त्र्येण श्रुत्यर्थमवधारयितुमशक्नुवन्तः प्रख्यातप्रणेतृकासु स्मृतिष्ववलम्बेरन् । तद्वलेन च श्रुत्यर्थं प्रतिपित्सेरन् । अस्मत्कृते च व्याख्याने न विश्वस्युर्बहुमानात् स्मृतीनां प्रणेतृषु । कपिलप्रभृतीनां चार्षं ज्ञानमप्रतिहतं

भाष्यका अनुवाद

हों, तो वे निरर्थक ही हो जायँगी ? इसलिए जैसे उनके साथ विरोध न हो, उस प्रकार वेदान्तोंका व्याख्यान करना चाहिए । परन्तु ईक्षण आदि हेतुओंसे सर्वज्ञ ब्रह्म ही जगत्का कारण है, इस प्रकार सुनिर्णीत श्रुतिके अर्थका स्मृतिके अनवकाशरूप दोषके प्रसंगसे फिर क्यों आक्षेप किया जाता है ? जिनकी बुद्धि स्वतंत्र है, उनके लिए यह आक्षेप नहीं है, परन्तु प्रायः मनुष्य परतंत्रबुद्धि होते हैं, इसलिए वे स्वतंत्रतासे श्रुतिके अर्थका निर्णय नहीं कर सकते, अतः प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा रचित स्मृतियोंका अवलम्बन करेंगे और उन्हींके बलसे श्रुतिका अर्थ जानना चाहेंगे । स्मृतियोंके रचयिताओंपर आदर होनेके कारण हमारे व्याख्यानपर विश्वास न करेंगे । स्मृति कहती है कि कपिल आदिका ज्ञान आर्ष और अप्रतिहत है ।

रत्नप्रभा

उचितम्, सावकाशनिरवकाशयोः निरवकाशं बलीय इति न्यायादित्याह— तस्मादिति । श्रुतिविरोधे स्मृत्यप्रामाण्यस्य इष्टत्वात् पूर्वपक्षो न युक्त इति शङ्कते— कथमिति । ये स्वातन्त्र्येण श्रुत्यर्थं ज्ञातुं शक्नुवन्ति, तेषामयं पूर्वपक्षो न भवेत्, साङ्ख्यवृद्धेषु श्रद्धालूनां तु भवेदित्याह—भवेदिति । तेषाम् अतीन्द्रियार्थज्ञान-रत्नप्रभाका अनुवाद

सकता है, इसलिए निरवकाश स्मृतिके अनुसार श्रुतिका व्याख्यान करना युक्त है, क्योंकि सावकाश और निरवकाशोंमें निरवकाश विशेष बलवान् होता है, ऐसा न्याय है, ऐसा कहते हैं—“तस्माद्” इत्यादिसे । श्रुतिके साथ विरोध हो, तो स्मृतिको अप्रमाण मानना इष्ट है, इसलिए पूर्वपक्ष युक्त नहीं है, ऐसा कहते हैं—“कथम्” इत्यादिसे । जो लोग स्वतन्त्र रीतिसे श्रुतिके अर्थको जाननेमें समर्थ हैं, उनके लिए यह पूर्वपक्ष नहीं, परन्तु सांख्यवृद्धोंमें जिनका श्रद्धा है, उनके लिए तो यह पूर्वपक्ष हो सकता है, ऐसा कहते हैं—“भवेत्” इत्यादिसे ।

भाष्य

स्मर्यते । श्रुतिश्च भवति—‘ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत्’ (श्वे० ५।२) इति । तस्मान्नैषां मतमयथार्थं शक्यं सम्भावयितुम् । तर्कावष्टम्भेन च तेऽर्थं प्रतिष्ठापयन्ति । तस्मादपि स्मृतिबलेन वेदान्ता व्याख्येया इति पुनराक्षेपः ।

तस्य समाधिः नाऽन्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रज्ञादिति । यदि स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गेनेश्वरकारणवाद आक्षिप्येत, एवमप्यन्या ईश्वरकारणवादिन्यः

भाष्यका अनुवाद

‘ऋषिं प्रसूतं कपिलं’ (जिसने आरम्भमें उत्पन्न किये हुए कपिल ऋषिको उत्पन्न होनेके अनन्तर स्थिति कालमें ज्ञान देकर पुष्ट किया, उस ईश्वरका दर्शन करना चाहिए) ऐसी श्रुति भी है । इसलिए उनके मतको अयथार्थ कहना युक्त नहीं है । ‘और ये तर्कके अवलम्बनसे अपना अर्थ स्थापन करते हैं, इसलिए भी स्मृतिके बलसे वेदान्तोंका व्याख्यान करना चाहिए, ऐसा फिर आक्षेप होता है ।

सिद्धान्ती—यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर अन्य स्मृतियाँ निरर्थक हो जायँगी । यदि सांख्यस्मृतिकी निरर्थकताके भयसे ईश्वर कारणवादका

रत्नप्रभा

वत्त्वाच्च तत्र श्रद्धा स्यादित्याह—कपिलप्रभृतीनां चेति ।

‘आदौ यो जायमानं च कपिलं जनयेदृषिम् ।

प्रसूतं विभृयाज्ज्ञानैस्तं पश्येत् परमेश्वरम् ॥१॥’ इति श्रुतियोजना ।

यथा सांख्यस्मृतिविरोधाद् ब्रह्मवादस्त्याज्य इति त्वया उच्यते, तथा स्मृत्यन्तरविरोधात् प्रधानवादः त्याज्य इति मया उच्यते इति सिद्धान्तयति— तस्य समाधिरिति । तस्मात्—ब्रह्मणः सकाशाद् अव्यक्तम्—मायया लीनम्, सूक्ष्मा-

रत्नप्रभाका अनुवाद

कपिल आदिको अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान होता है, इसलिए उनमें श्रद्धा हो सकती है, ऐसा कहते हैं—“कपिलप्रभृतीनां च” इत्यादिसे । ‘आदौ यो……परमेश्वरम्’ (जिसने आरम्भमें उत्पन्न किये हुए कपिल ऋषिको उत्पन्न होनेके अनन्तर ज्ञान देकर पुष्ट किया, उस परमात्माका दर्शन करना चाहिए) ‘ऋषिं प्रसूतं’ इत्यादि श्रुतिकी ऐसी योजना करनी चाहिए ।

जैसे तुम सांख्य स्मृतिके विरोधसे ब्रह्मवाद को त्याज्य बतलाते हो, उसी प्रकार हम भी अन्य स्मृतियोंके विरोधसे प्रधानवादको त्याज्य कहते हैं, इस प्रकार सिद्धान्त करते हैं—“तस्य समाधिः” इत्यादिसे । तस्माद्—ब्रह्मसे, अव्यक्तम्—मायामें लीन सूक्ष्मरूप जगत् ।

भाष्य

स्मृतयोऽनवकाशाः प्रसज्येरन् । ता उदाहरिष्यामः—‘यत्तत्सूक्ष्मम-
विज्ञेयम्’ इति परं ब्रह्म प्रकृत्य ‘स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चेति कथ्यते’
इति चोक्त्वा ‘तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम’ इत्याह । तथाऽ-
न्यत्रापि ‘अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मनिर्गुणे संप्रलीयते’ इत्याह ।

‘अतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं नारायणः सर्वमिदं पुराणः ।

स सर्गकाले च करोति सर्वं संहारकाले च तदत्ति भूयः ॥’

इति पुराणे । भगवद्गीतासु च—

‘अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।’

(भ०गी०७।६) इति । परमात्मानमेव च प्रकृत्याऽऽपस्तम्बः पठति—

‘तस्मात् कायाः प्रभवन्ति सर्वे स मूलं शाश्वतिकः स नित्यः ।

भाष्यका अनुवाद

आक्षेप किया जाय तो ईश्वर जगत् का कारण है, ऐसा कहनेवाली दूसरी स्मृतियाँ
निरर्थक हो जायँगी । उनको उद्धृत करते हैं—‘यत्तत्सूक्ष्म०’ (जो सूक्ष्म अविज्ञेय
है) इस प्रकार परब्रह्मको प्रस्तुत करके ‘स ह्यन्तरात्मा भूतानां०’ (वह निश्चय
प्राणियोंका अन्तरात्मा और क्षेत्रज्ञ कहलाता है) ऐसा कहकर ‘तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं’
(हे द्विजश्रेष्ठ ! उससे तीन गुणवाला अव्यक्त उत्पन्न हुआ) ऐसा कहते हैं ।
उसी प्रकार दूसरे स्थलोंमें भी ‘अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन्०’ (हे ब्रह्मन् ! निर्गुण
पुरुषमें अव्यक्त लीन होता है) ऐसा निरूपण किया गया है । पुराणमें भी
‘अतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं०’ (इसलिए तुम यह संक्षेपसे सुनो यह सम्पूर्ण प्रपंच
पुराण पुरुष नारायणरूप है । वह सृष्टिकालमें सबको उत्पन्न करता है और
संहार कालमें सबका विनाश करता है) ऐसा कहा है । ‘अहं कृत्स्नस्य जगतः०’
(मैं सम्पूर्ण जगत्का निर्माता और संहारकर्ता हूँ) ऐसा भगवद्गीतामें भी है ।
परमात्माको प्रस्तुत करके ही आपस्तम्ब कहते हैं—‘तस्मात् कायाः प्रभवन्ति

रत्नप्रभा

त्मकं जगत् इति यावत् । इतिहासवाक्यानि उक्त्वा पुराणसम्मतिमाह—अत-
श्चेति । प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः—जन्महेतुः । प्रलीयतेऽस्मिन्निति प्रलयः—
लयाधिष्ठानम् । तस्मात्—कर्तुरीश्वरात्, कायाः—ब्रह्मादयः प्रभवन्ति स एव मूल-

रत्नप्रभाका अनुवाद

इतिहास वाक्योंको कहकर पुराण सम्मति कहते हैं—“अतश्च” इत्यादिसे । प्रभवः—
उत्पत्तिका कारण । प्रलयः—लयाका अधिष्ठान । तस्मात्—कर्ता ईश्वरसे, कायाः—ब्रह्मासे

भाष्य

(ध०सू०१।८।२३।२) इति एवमनेकशः स्मृतिष्वपीश्वरः कारणत्वेनोपादान-
त्वेन च प्रकाशयते । स्मृतिबलेन प्रत्यवतिष्ठमानस्य स्मृतिबलेनैवोत्तरं
प्रवक्ष्यामीत्यतोऽयमन्यस्मृत्यनवकाशदोषोपन्यासः । दर्शितं तु श्रुतीनामी-
श्वरकारणवादं प्रति तात्पर्यम् । विप्रतिपत्तौ च स्मृतीनामवश्यकर्तव्येऽन्यतर-
परिग्रहेऽन्यतरपरित्यागे च श्रुत्यनुसारिण्यः स्मृतयः प्रमाणम्, अनपेक्ष्या
इतराः । तदुक्तं प्रमाणलक्षणे—विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्’

भाष्यका अनुवाद

सर्वे०’ (उस ईश्वरसे सब शरीर उत्पन्न होते हैं, वह उपादान है, कूटस्थ है
और नित्य है) । इस प्रकार अनेक रीतिसे स्मृतियोंमें ईश्वर निमित्त और
उपादानरूपसे वर्णित है । स्मृतिबलसे विरोध करनेवालेको स्मृतिबलसे ही
उत्तर दूँगा, ऐसा सोचकर अन्य स्मृतिके अनवकाशरूप दोषका उपन्यास किया
है । श्रुतियोंका तात्पर्य ईश्वर कारणवादमें है, ऐसा दिखलाया गया है । और
स्मृतियोंके विरोधमें एकका ग्रहण और अन्यका त्याग अवश्य कर्तव्य होनेसे
श्रुतिका अनुसरण करनेवाली स्मृतियाँ प्रमाण हैं और अन्य स्मृतियाँ अप्रमाण
हैं, क्योंकि प्रमाण लक्षणमें कहा है—‘विरोधे त्वनपेक्षं०’ (श्रुतिके साथ
विरोध हो, तो स्मृतिका प्रामाण्य त्याज्य है, विरोध न हो, तो श्रुतिका अनुमान

रत्नप्रभा

मुपादानम् । किं परिणामी ? न, शाश्वतिकः कूटस्थः । अतः स नित्य
इत्यर्थः । ननु श्रुतिविरोधः किमिति नोक्त इत्यत आह—स्मृतिबलेनेति ।
स्मृतीनां मिथो विरोधे कथं तत्त्वनिर्णयस्तत्राऽऽह—दर्शितन्त्विति । श्रुतिभिरेव
तत्त्वनिर्णय इत्यर्थः । स्मृतीनां का गतिरित्यत आह—विप्रतिपत्तौ चेति ।
वस्तुतत्त्वे स्मृतीनां मिथो विरोधे वस्तुनि विकल्पायोगात् क्लृप्तश्रुतिमूलाः स्मृतयः

रत्नप्रभाका अनुवाद

लेकर स्तम्बपर्यन्त देह उत्पन्न होते हैं, वही मूल—उपादानकारण हैं । क्या परमात्मा
परिणामी है ? नहीं, कूटस्थ है इसलिए वह नित्य है । यदि कोई कहे कि सांख्यस्मृतिसे
श्रुतिका विरोध है, ऐसा क्यों नहीं कहा, इसपर कहते हैं—‘स्मृतिबलेन’ इत्यादि । स्मृतियोंमें
परस्पर विरोध हो, तो निर्णय किस प्रकार करना चाहिए, इसपर कहते हैं—‘दर्शितं तु’
इत्यादि । श्रुतियोंसे ही तत्त्वका निर्णय करना चाहिए, ऐसा अर्थ है । तब स्मृतियोंकी क्या
गति है, इसपर कहते हैं—‘विप्रतिपत्तौ च’ इत्यादि । आशय यह कि यदि पदार्थकी
यथार्थतामें स्मृतियोंका परस्पर विरोध हो, तो वस्तुका विकल्प तो नहीं हो सकता, इसलिए

भाष्य

(जै०सू० १।३।३) इति । न चाऽतीन्द्रियानर्थान् श्रुतिमन्तरेण कश्चिदुपलभत इति शक्यं संभावयितुम्, निमित्ताभावात् । शक्यं कपिलादीनां सिद्धानामप्रतिहतज्ञानत्वादिति चेत्, न; सिद्धेरपि सापेक्षत्वात् । धर्मा-

भाष्यका अनुवाद

होता है) । श्रुति प्रमाणको छोड़कर अन्य प्रमाणोंसे किसीको अतीन्द्रिय अर्थका ज्ञान होता है, ऐसी संभावना नहीं की जा सकती, क्योंकि कोई निमित्त नहीं है । अप्रतिहत ज्ञान होनेके कारण कपिल आदि सिद्धोंको अतीन्द्रियार्थका ज्ञान होता है, ऐसा कहना युक्त नहीं है, क्योंकि सिद्धि भी सापेक्ष है । सिद्धिको धर्मके अनुष्ठानकी

रत्नप्रभा

प्रमाणम्, इतरास्तु कल्प्यश्रुतिमूला न प्रमाणमित्यर्थः । क्लृप्तश्रुतिविरोधे स्मृतिर्न प्रमाणमित्यत्र जैमिनीयन्यायमाह—तदुक्तमिति । “औदुम्बरीं स्पृष्ट्वोद्गायेद्” इति प्रत्यक्षश्रुतिविरुद्धा “सा सर्वा वेष्टयितव्या” इति स्मृतिर्मानं न वेति सन्देहे मूलश्रुत्यनुमानाद् मानमिति प्राप्ते, सिद्धान्तः—क्लृप्तश्रुतिविरोधे स्मृतिप्रामाण्यम् अनपेक्षम्—अपेक्षाशून्यम्, हेयमिति यावत् । हि यतः असति विरोधे श्रुत्यनुमानं भवति, अत्र तु विरोधे सति श्रुत्यनुमानायोगाद् मूलाभावात् सर्ववेष्टनस्मृतिरप्रमाणमित्यर्थः । अस्तु साङ्ख्यस्मृतिः प्रत्यक्षमूला इत्यत आह—न चेति । योगिनां सिद्धिमहिम्नाऽतीन्द्रियज्ञानं सम्भावयितुं शक्यमिति शङ्कते—शक्यमिति । कपिलादिभिः किलाऽऽदौ वेदप्रामाण्यं निश्चित्य तदर्थस्य धर्मस्याऽ-

रत्नप्रभाका अनुवाद

उपलब्ध श्रुति जिनका मूल है, वे स्मृतियाँ ही प्रमाण हैं, अनुमेय श्रुति जिनका मूल है, वे प्रमाण नहीं हैं । उपलब्ध श्रुतिसे विरोध हो, तो स्मृति प्रमाण नहीं हो सकती, इसमें जैमिनिका न्याय कहते हैं—“तदुक्तम्” इत्यादिसे । ‘औदुम्बरीं०’ (उद्गाता गूलर वृक्षकी शाखाको स्पर्श करके सामवेद गावे) इस प्रत्यक्ष श्रुतिसे विरुद्ध ‘सा सर्वा०’ (उसका पूर्ण वेष्टन करना चाहिए) यह स्मृति प्रमाण है या नहीं ऐसा संशय होनेपर मूल श्रुतिका अनुमान होनेसे स्मृति प्रमाण है, ऐसा पूर्वपक्ष प्राप्त होनेपर सिद्धान्त कहते हैं—उपलब्ध श्रुतिके साथ स्मृतिका विरोध हो, तो वह स्मृति प्रमाण नहीं है, किन्तु त्याज्य है, क्योंकि विरोध न हो तो श्रुतिका अनुमान होता है, यहाँ प्रत्यक्ष श्रुतिसे विरोध होनेके कारण श्रुतिका अनुमान नहीं हो सकता है, इसलिए मूल न होनेसे सर्ववेष्टन स्मृति अप्रमाण है, ऐसा अर्थ है । तब सांख्यस्मृति प्रत्यक्षमूलक हो, इसपर कहते हैं—“न च” इत्यादि । योगियोंकी सिद्धिमहिमासे अतीन्द्रियपदार्थके ज्ञानकी संभावना कर सकते हैं, ऐसा शंका करते हैं—“शक्यम्” इत्यादिसे । कपिल आदि ऋषियोंने

भाष्य

नुष्ठानापेक्षा हि सिद्धिः । स च धर्मश्चोदनालक्षणः । ततश्च पूर्वसिद्धाया-
श्चोदानाया अर्थो न पश्चिमसिद्धपुरुषवचनवशेनाऽतिशङ्कितुं शक्यते । सिद्ध-
व्यपाश्रयकल्पनायामपि बहुत्वात् सिद्धानां प्रदर्शितेन प्रकारेण स्मृतिविप्र-
तिपत्तौ सत्यां न श्रुतिव्यपाश्रयादन्यन्निर्णयकारणमस्ति । परतन्त्रप्रज्ञ-

भाष्यका अनुवाद

अपेक्षा है और वह धर्म प्रेरणालक्षण है । इसलिए पूर्वसिद्ध प्रेरणाके अर्थका अनन्तरसिद्ध पुरुषके वचनबलसे आक्षेप नहीं किया जा सकता । सिद्धोंके वचनका आश्रय करके वेदार्थकी कल्पनामें भी सिद्ध बहुत होनेसे उक्त रीतिसे स्मृतियोंका विरोध होनेपर श्रुतिके सिवा दूसरा निर्णायक कोई नहीं है । परतंत्र-

रत्नप्रभा

नुष्ठानेन सिद्धिः सम्पादिता, तथा सिद्धया प्रणीतस्मृत्यनुसारेणाऽनादिश्रुतिपीडा न युक्ता उपजीव्यविरोधादिति परिहरति—न सिद्धेरपीति । अतिशङ्कितुमिति । श्रुतीनां मुख्यार्थमतिक्रम्य उपचरितार्थत्वं शङ्कितुं न शक्यते इत्यर्थः । स्वतः सिद्धेर्वेदो नोपजीव्य इति चेत्, न, अनीश्वरस्य स्वतःसिद्धौ मानाभावात् । अङ्गीकृत्याऽप्याह—सिद्धेति । सिद्धानां वचनमाश्रित्य वेदार्थकल्पनायामपि सिद्धोक्तीनां मिथो विरोधे श्रुत्याश्रितमन्वाद्युक्तिभिः एव वेदार्थनिर्णयो युक्त इत्यर्थः । श्रुतिरूपाश्रयं विना सिद्धोक्तिमात्रं न तत्त्वनिर्णयकारणमिति अक्षरार्थः । ननु मन्दमतेः सांख्यस्मृतौ श्रद्धा भवति, तस्य मतिः वेदान्तमार्गं कथमानेया

रत्नप्रभाका अनुवाद

आरंभमें वेदका प्रमाण निश्चय करके वेदके अर्थ धर्मके अनुष्ठानसे सिद्धि प्राप्त की, उस सिद्धिसे रचित स्मृतिके अनुसार अनादे सिद्ध श्रुतिका बाध करना युक्त नहीं है, क्योंकि उपजीव्यका विरोध होता है, ऐसा परिहार करते हैं—“न सिद्धेरपि” इत्यादिसे । “अति-शङ्कितुम्” इत्यादि । श्रुतियोंके मुख्य अर्थका अतिक्रमण करके गौण अर्थकी शंका करना युक्त नहीं है, ऐसा अर्थ है । परन्तु कपिल आदि स्वयंसिद्ध हैं, उनकी सिद्धिके प्रति वेद आधार-भूत नहीं है, यह कथन युक्त नहीं है, क्योंकि ईश्वरके सिवा और किसीके स्वतःसिद्ध होनेमें प्रमाण नहीं है । कपिल आदिको स्वतःसिद्ध अंगीकार करके भी कहते हैं—“सिद्ध” इत्यादि । सिद्धोंकी उक्तियोंके अनुसार श्रुतिके अर्थकी कल्पना करें, तो सिद्धोंकी उक्तियोंमें परस्पर विरोध होनेपर श्रुतिमूलक मनु आदिका उक्तियोंसे ही वेदके अर्थका निर्णय करना युक्त है, ऐसा अर्थ है । श्रुतिरूप आश्रयके बिना सिद्धोक्तिमात्र तत्त्वके निर्णयका कारण नहीं है, ऐसा अक्षरार्थ है । परन्तु सांख्यस्मृतियोंमें श्रद्धा रखनेवाले मन्दमतिकी वेदान्तमार्गमें प्रवृत्ति किस प्रकार करनी

भाष्य

स्याऽपि नाऽकस्मात् स्मृतिविशेषविषयः पक्षपातो युक्तः । कस्यचित् क्वचित् पक्षपाते सति पुरुषमतिवैश्वरूप्येण तत्त्वाव्यवस्थानप्रसङ्गात् । तस्मात् तस्यापि स्मृतिविप्रतिपत्त्युपन्यासेन श्रुत्यनुसाराननुसारविषयविवेचनेन च सन्मार्गं प्रज्ञा संग्रहणीया । या तु श्रुतिः कपिलस्य ज्ञानातिशयं प्रदर्शयन्ती प्रदर्शिता न तथा श्रुतिविरुद्धमपि कापिलं मतं श्रद्धातुं शक्यम्, कपिलमिति श्रुतिसामान्यमात्रत्वात् । अन्यस्य च कपिलस्य सगरपुत्राणां प्रतप्तुर्वासुदेवनाम्नः स्मरणात् । अन्यार्थदर्शनस्य च प्राप्तिरहितस्याऽसाध-

भाष्यका अनुवाद

बुद्धि पुरुषोंका भी एकस्मात् किसी विशेष स्मृतिके ऊपर पक्षपात होना युक्त नहीं है, क्योंकि किसी एकका किसीमें पक्षपात होनेपर पुरुषबुद्धिवैचित्र्यसे तत्त्वकी अव्यवस्था हो जायगी । इसलिए स्मृतियोंके विरोधका उपन्यास करके यह स्मृति श्रुतिका अनुसरण करती है, यह श्रुतिका अनुसरण नहीं करती इस प्रकार विवेचन करके उसकी भी बुद्धि सन्मार्गमें लानी चाहिए । कपिलका अतिशय ज्ञान दिखानेवाली जो श्रुति कही गई है, उससे श्रुतिविरुद्ध कपिल मतमें श्रद्धा नहीं की जा सकती, क्योंकि सांख्य प्रणेता कपिल और श्रुत्युक्त कपिलमें केवल शब्दसादृश्य है । और सगरके पुत्रोंको जलानेवाला वासुदेव नामक अन्य कपिल भी स्मृतिमें प्रसिद्ध है । अन्य प्रमाणसे प्राप्त न होनेवाले अन्यार्थ जो

रत्नप्रभा

इत्यत आह—परतन्त्रेत्यादिना । ननु श्रुत्या कपिलस्य सर्वज्ञत्वोक्तेः तन्मते श्रद्धा दुर्वारा इत्यत आह—या त्विति । कपिलशब्दमात्रेण सांख्यकर्ता श्रौत इति भ्रान्तिः अयुक्ता, तस्य द्वैतवादिनः सर्वज्ञत्वायोगाद् । अत्र च सर्वज्ञानसम्भूतत्वेन श्रुतः कपिलो वासुदेवांश एव । स हि सर्वात्मत्वज्ञानं वैदिकं सांख्यम् उपदिशतीति सर्वज्ञ इति भावः । प्रतप्तुः—प्रदाहकस्य । किञ्च, यः कपिलं

रत्नप्रभाका अनुवाद

चाहिए, इसपर कहते हैं—‘परतन्त्र’ इत्यादिसे । परन्तु श्रुतिमें कपिल सर्वज्ञ कहा गया है, इसलिए उसके मतमें श्रद्धा होना दुर्वार है, इसपर कहते हैं—“या तु” इत्यादि । कपिल इस शब्दमात्रसे सांख्यकर्ता कपिल श्रुतिप्रतिपादित है, ऐसी भ्रान्ति नहीं करनी चाहिए, क्योंकि द्वैतवादी कपिलका सर्वज्ञ होना संभव नहीं है । श्रुतिमें प्रतिपादित, सर्वज्ञानसे परिपूर्ण कपिल वासुदेवका अंश ही है । वह सर्वात्मत्वज्ञानरूप वैदिक सांख्यका उपदेश करता है, इसलिए वह सर्वज्ञ है, ऐसा समझना चाहिए । प्रतप्ता—दाहक । और जो ईश्वर ज्ञानसे कपिलका

भाष्य

कत्वात् । भवति चान्या मनोर्माहात्म्यं प्रख्यापयन्ती श्रुतिः—‘यद्वै किञ्च मनुरवदत्तद् भेषजम्’ (तै० सं० २।२।१०।२) इति । मनुना च—

‘सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।

संपश्यन्नात्मयाजी वै स्वाराज्यमधिगच्छति ॥’ (१२।९१)

इति सर्वात्मत्वदर्शनं प्रशंसता कापिलं मतं निन्द्यत इति गम्यते । कपिलो हि न सर्वात्मत्वदर्शनमनुमन्यते, आत्मभेदाभ्युपगमात् । महाभारतेऽपि च ‘बहवः पुरुषा ब्रह्मन्नुताहो एक एव तु’ इति विचार्य

भाष्यका अनुवाद

अनुवाद है, वह स्वार्थसाधक नहीं हो सकता । और ‘यद्वै किञ्च मनु०’ (जो कुछ मनुने कहा है, वह औषध है) ऐसा मनुका माहात्म्य बतलानेवाली दूसरी श्रुति है । ‘सर्वभूतेषु चात्मानं०’ (सब भूतोंमें आत्माको और आत्मामें सब भूतोंको देखनेवाला आत्मयाजी स्वाराज्यको प्राप्त करता है) इस प्रकार आत्माको सर्वस्वरूप समझनेवालेकी ही प्रशंसा करते हुए मनुने कपिलके मतकी निन्दा की है, ऐसा प्रतीत होता है । आत्मा सर्वस्वरूप है, इस दर्शनमें कपिलकी अनुमति नहीं है, क्योंकि वह आत्माका भेद स्वीकार करता है । महाभारतमें भी ‘बहवः

रत्नप्रभा

ज्ञानैः विभर्ति तमीश्वरं पश्येदिति विधीयते, तथा चाऽन्यार्थस्य ईश्वरप्रतिपत्ति-शेषस्य कपिलसर्वज्ञत्वस्य दर्शनमनुवादः तस्य मानान्तरेण प्राप्तिशून्यस्य स्वार्थसाधकत्वायोगात् न अनुवादमात्रात् सर्वज्ञत्वसिद्धिरित्याह—अन्यार्थेति । द्वैतवादिनः कपिलस्य श्रौतत्वं निरस्य ब्रह्मवादिनो मनोः श्रौतत्वमाह—भवति चेति । इतिहासेऽपि कापिलमतनिन्दापूर्वकम् अद्वैतं दर्शितमित्याह—महाभारतेऽपीति ।

रत्नप्रभाका अनुवाद

पोषण करता है, उसके दर्शनका विधान है । वहाँ ईश्वरज्ञानके अंगभूत जो कपिलका सर्वज्ञत्व है, उसका दर्शन अर्थात् अनुवाद है । इस प्रकार यह सर्वज्ञत्व अन्यार्थक—ईश्वरज्ञानका अंग है और वह किसी अन्य प्रमाणसे प्राप्त नहीं होता, इसलिए वह स्वार्थ साधक हो, यह युक्त नहीं है, इसलिए अनुवादमात्रसे सर्वज्ञत्वसिद्धि नहीं है, ऐसा कहते हैं—“अन्यार्थ” इत्यादिसे । द्वैतवादी कपिलके मतमें श्रुतिमूलकताका निराकरण करके अद्वैतवादी मनुके मतको श्रुतिमूलक कहते हैं—“भवति च” इत्यादिसे । इतिहासमें भी कपिलमतकी निन्दापूर्वक अद्वैत दिखलाया

(१) ब्रह्मार्पणन्यायसे ज्योतिष्टोम आदि करनेवाला ।

(२) ब्रह्मरव, ‘स्वेन राजते इति स्वराट् तस्य भावस्तत्ता’ ।

भाष्य

‘बहवः पुरुषा राजन् सांख्ययोगविचारिणाम्’ इति परपक्षमुपन्यस्य तद्व्युदासेन—

‘बहूनां पुरुषाणां हि यथैका योनिरुच्यते ।
तथा तं पुरुषं विश्वमाख्यास्यामि गुणाधिकम् ।’

इत्युपक्रम्य—

‘ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिताः ।
सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचित् ॥
विश्वमूर्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः ।

भाष्यका अनुवाद

पुरुषा०’ (हे ब्रह्मन् ! आत्मा बहुत हैं या एक ही है) ऐसा विचार कर ‘बहवः पुरुषा राजन्०’ (हे राजन् ! सांख्य और योग दर्शनवालोंके मतमें आत्मा बहुत हैं) ऐसा परपक्षका उपन्यास करके उसका निरूपण करते हुए ‘बहूनां पुरुषाणां हि यथैका०’ (जैसे बहुत पुरुषाकार देहोंकी एक पृथिवी उपादान कहलाती है, वैसे ही जो उपादान होनेसे सर्वात्मक और सर्वगुणसम्पन्न उस आत्माको कहूँगा) ऐसा उपक्रम करके ‘ममान्तरात्मा तव च०’ (मेरा और तुम्हारा जो अन्तरात्मा है और जो अन्य आत्माएँ हैं, उन सबका वह साक्षिभूत है । कहीं भी कोई भी उसका ग्रहण नहीं कर सकता । सब सिर उसीके हैं, सब भुजाएँ उसीकी हैं, सब पाद उसके ही हैं,

रत्नप्रभा

पुरुषाः आत्मानः किं वस्तुतो भिन्नाः उत सर्वदृश्यानां प्रत्यगात्मा एक इति विमर्शार्थः । बहूनां पुरुषाकाराणां देहानां यथैका योनिः उपादानं पृथ्वी, तथा तं पुरुषम् आत्मानं विश्वं सर्वोपादानत्वेन सर्वात्मकं सर्वज्ञत्वादिगुणैः सम्पन्नं कथयिष्यामि । विश्वे सर्वे लोकप्रसिद्धा देवतिर्यङ्मनुष्यादीनां मूर्धानोऽस्यैवेति विश्वमूर्धा, एकस्यैव सर्वक्षेत्रेषु प्रतिबिम्बभावेन प्रविष्टत्वात् । एवं विश्वभुजत्वा-

रत्नप्रभाका अनुवाद

गया है, ऐसा कहते हैं—“महाभारतेऽपि” इत्यादिसे । पुरुष अर्थात् आत्मा क्या वस्तुतः भिन्न है या सब दृश्य पदार्थोंका प्रत्यगात्मा एक ही है, यह संशयका अर्थ है । जैसे बहुत पुरुषाकार देहोंकी एक पृथिवी उपादान है, वैसे ही जो सबका उपादान होनेसे सर्वात्मक है और सर्वज्ञत्व आदि गुणोंसे संपन्न है उस आत्माको आगे कहेंगे । विश्व—सब लोकप्रसिद्ध देव, पशु, मनुष्य आदिके मस्तक जिसके हैं, वह ‘विश्वमूर्धा’ है, क्योंकि एक ही सब क्षेत्रोंमें प्रतिबिम्बभावसे प्रविष्ट है । उसी प्रकार ‘विश्वभुजः’ इत्यादिका अर्थ है । सब भूतोंमें एक ही चरता—जानता

भाष्य

एकश्चरति भूतेषु स्वैरचारी यथासुखम् ॥
 इति सर्वात्मतैव निर्धारिता । श्रुतिश्च सर्वात्मतायां भवति—
 'यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
 तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥'

(ई०७) इत्येवंविधा । अतश्च सिद्धमात्मभेदकल्पनयापि कापिलस्य तन्त्रस्य वेदविरुद्धत्वं वेदानुसारिमनुवचनविरुद्धत्वं च, न केवलं स्वतन्त्र-प्रकृतिकल्पनयैवेति । वेदस्य हि निरपेक्षं स्वार्थं प्रामाण्यं रवेरिव रूप-

भाष्यका अनुवाद

आंखें और नासिकाएँ उसीकी हैं । अकेला स्वैरचारी—स्वतंत्र, सुखस्वरूप भूतोंमें विचरता है अर्थात् उनको जानता है) इससे सर्वात्मता ही निर्धारित की गई है । 'यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवा०' (ज्ञानकालमें सब भूत आत्मा ही हैं, ऐसा जाननेवाले, एवं एकत्वदर्शीके लिए क्या मोह और क्या शोक है) इस प्रकारकी श्रुति भी सर्वात्मता दिखलाती है । इससे यह सिद्ध होता है कि केवल स्वतंत्र प्रधानकी कल्पनासे ही नहीं किन्तु आत्मभेदकी कल्पनासे भी कापिलतंत्र वेदविरुद्ध है, और वेदानुसारी मनुवचनसे भी विरुद्ध है, क्योंकि जैसे रविका रूपके विषयमें

रत्नप्रभा

दियोजना । सर्वभूतेषु एकः चरति—अवगच्छति—सर्वज्ञ इत्यर्थः । स्वैरचारी-स्वतन्त्रः । नाऽस्य नियन्ता कश्चिदस्ति । सर्वेश्वर इत्यर्थः । यथासुखमिति । विशोकानन्दस्वरूप इति यावत् । कापिलतन्त्रस्य वेदमूलस्मृतिविरोधमुक्त्वा साक्षाद् वेदविरोधमाह—श्रुतिश्चेति । यस्मिन्—ज्ञानकाले । केवलं स्वतन्त्रप्रकृतिकल्पनयैव वेदविरुद्धं न, किन्तु आत्मभेदकल्पनयाऽपीति सिद्धमिति सम्बन्धः । स्मृतिविरोधे वेदस्यैव अप्रामाण्यं किं न स्यादित्यत आह—वेदस्य हीति ।

रत्नप्रभाका अनुवाद

है अर्थात् सर्वज्ञ है । स्वैरचारी—स्वतंत्र, जिसका कोई नियन्ता नहीं है अर्थात् सर्वेश्वर । 'यथासुखम्'—शोकरहित आनन्दस्वरूप । कपिलस्मृति वेदमूलक स्मृतियोंसे विरुद्ध है, ऐसा कहकर साक्षात् वेदसे भी विरुद्ध है, ऐसा कहते हैं—'श्रुतिश्च' इत्यादिसे । 'यस्मिन्'—जिस ज्ञानकालमें । सांख्य स्मृति केवल स्वतन्त्र प्रकृतिकी कल्पनासे ही वेदविरुद्ध नहीं है, किन्तु आत्मभेदकल्पनासे भी उसकी वेदविरुद्धता सिद्ध होती है, ऐसा संबन्ध है । स्मृतिके साथ विरोध होनेपर वेद ही अप्रमाण क्यों न मान लिया जाय, इसपर कहते हैं—'वेदस्य हि' इत्यादि । वेदका प्रामाण्य स्वतः सिद्ध है, क्योंकि वह अपौरुषेय है ।

भाष्य

विषये । पुरुषवचसां तु मूलान्तरापेक्षं वक्तृस्मृतिव्यवहितं चेति विप्रकर्षः ।
तस्माद् वेदविरुद्धे विषये स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गो न दोषः ॥ १ ॥

कुतश्च स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गो न दोषः—

भाष्यका अनुवाद

निरपेक्ष प्रामाण्य है, वैसे ही अपने अर्थमें वेदका प्रामाण्य निरपेक्ष है । और पुरुषवचनोंका प्रामाण्य अन्य मूलकी अपेक्षा रखता है और उसमें वक्ताकी अर्थ स्मृतिका व्यवधान है, इस प्रकार दोनोंमें बहुत भेद है । इसलिए वेदविरुद्ध विषयमें स्मृतिका अनवकाशप्रसंग दोष नहीं है ॥१॥

और किस कारण स्मृत्यनवकाशप्रसङ्ग दोष नहीं है ?

रत्नप्रभा

वेदस्य प्रामाण्यं स्वतःसिद्धम्, अपौरुषेयत्वात् । पौरुषेयवाक्यानां स्वार्थस्मृतितन्मूला-
नुभवयोः कल्पनया प्रामाण्यं ज्ञेयमिति व्यवहितं परतः प्रामाण्यमिति विप्रकर्षः ।
श्रुतिस्मृत्योः विशेष इत्यक्षरार्थः । समयोः विरोधे हि निरवकाशेन सावकाशं
बाध्यम् । इह स्वतःपरतःप्रामाण्ययोः वैषम्याद् झटिति निश्चितप्रामाण्येन
चाऽनुपसंजातविरोधिना वेदवाक्येन विरुद्धस्मृतेः एव बाध इति भावः । तस्मा-
दिति । विशेषादित्यर्थः । भ्रान्तिमूलत्वसम्भवादिति भावः ॥ १ ॥

रत्नप्रभाका अनुवाद

और पौरुषेयवाक्योंका प्रामाण्य तो उनके अर्थकी स्मृति और उस स्मृतिका मूल जो अनुभव
इन दोनोंकी कल्पनासे समझा जाता है, इसलिए यह परतः प्रामाण्य है और व्यवहित है अर्थात्
स्मृति और अनुभवका व्यवधान है, इस प्रकार श्रुति और स्मृतिमें महान् अन्तर है, यह
अक्षरार्थ है । तुल्य बलवालोंके विरोधमें निरवकाशसे सावकाशका बाध होता है । यहाँ तो
स्वतःप्रामाण्य (वेदका) और परतः प्रामाण्य (स्मृतिका) ये दोनों विषम हैं, अतः जिसका
प्रामाण्य निश्चित है और जिसका कोई विरोधी नहीं है, उस वेदवाक्यसे तद्विरुद्ध स्मृतिका ही
बाध होता है । 'तस्माद्'—विशेष-भेद है इसलिए अर्थात् स्मृतिमें भ्रान्तिमूलकत्वका संभव
है इसलिए ॥१॥

(१) जिन वाक्योंकी रचना अर्थज्ञानपूर्वक होती, वे वाक्य पौरुषेय कहलाते हैं । वेद यद्यपि
ईश्वरोच्चरित है, तो भी अर्थज्ञानपूर्वक रचित नहीं है, इसलिए स्वतः प्रमाण है । सांख्य आदि
स्मृतियाँ तो अर्थज्ञानपूर्वक रचित हैं । कपिल आदिने अर्थका स्मरण करके ही तदनुसार वाक्यकी
रचना की है । स्मरण अनुभवपूर्वक होता है । अतः पूर्वानुभव और उस अनुभवसे उत्पन्न
संस्कारसे संभूत स्मरणद्वारा कल्पित होनेके कारण स्मृतियाँ परतः प्रमाण हैं । स्मृतिके प्रामाण्यके
निश्चयके लिए स्मृति और अनुभवका कल्पना होनेके समय ही स्वतः प्रमाण श्रुतिके अर्थका
निश्चय हो जाता है, इसलिए श्रुतिसे स्मृति बाधित हो जाती है ।

इतरेषां चानुपलब्धेः ॥ २ ॥

पदच्छेद—इतरेषां, च, अनुपलब्धेः ।

पदार्थोक्ति—इतरेषां—साङ्ख्यस्मृतिप्रसिद्धानामितरेषां महदादितत्वानाम्, अनुपलब्धेश्च—लोके वेदे चानुपलब्धेश्च [न साङ्ख्यस्मृतेरप्रामाण्यं दोषः] ।

भाषार्थ—सांख्यस्मृतिमें प्रसिद्ध प्रधानसे भिन्न महत् आदि तत्त्वोंके लोकमें और वेदमें प्रसिद्ध न होनेके कारण सांख्यस्मृतिको अप्रमाण माननेमें कोई दोष नहीं है ।

भाष्य

प्रधानादितराणि यानि प्रधानपरिणामत्वेन स्मृतौ कल्पितानि महदादीनि न तानि वेदे लोके वोपलभ्यन्ते । भूतेन्द्रियाणि तावल्लोकवेदप्रसिद्धत्वाच्छक्यन्ते स्मर्तुम् । अलोकवेदप्रसिद्धत्वाच्च महदादीनां षष्ठस्येवे-

भाष्यका अनुवाद

प्रधानसे भिन्न महत् आदि तत्त्व जिनकी प्रधानके परिणामरूपसे स्मृतिमें कल्पना की गई है, वे वेदमें या लोकमें उपलब्ध नहीं होते । लोक और वेदमें प्रसिद्ध होनेके कारण भूत और इन्द्रियोंका स्मृतिमें प्रतिपादन हो सकता है, परन्तु लोक और वेदमें प्रसिद्ध न होनेके कारण छोटे इन्द्रियार्थके समान महद् आदिका

रत्नप्रभा

महदहङ्कारौ तावदप्रसिद्धौ, अहङ्कारप्रकृतिकत्वेन तन्मात्राण्यपि अप्रसिद्धानि स्मर्तुं न शक्यन्ते इत्याह—इतरेषाञ्चेति । ननु महतः परमव्यक्तमिति श्रुति-

रत्नप्रभाका अनुवाद

महत् और अहङ्कार अप्रसिद्ध हैं और अहङ्कारका विकार होनेसे तन्मात्राएँ भी अप्रसिद्ध हैं, इसलिए उनका भी स्मृतिमें प्रतिपादन नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं—“इतरेषां च” इत्यादिसे । परन्तु ‘महतः परमव्यक्तम्’ इत्यादि श्रुतियोंमें महदादि प्रसिद्ध हैं, इस शङ्काका

(१) चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक् और श्रोत्र, ये पांच ही इन्द्रियाँ हैं, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये पांच इन्द्रियोंके विषय हैं, न छोटी इन्द्रिय है और न छोटा विषय ही है, इसी प्रकार महत् आदि छोटी इन्द्रिय आदिकी तरह न लोकमें प्रसिद्ध हैं, न वेदमें ही प्रसिद्ध हैं, अतः वे हैं ही नहीं । स्मृति तो प्रमाणमूलक है, महदादि स्मृतिके विषयमें जब न श्रुति मूल है, न प्रत्यक्ष मूल है, तब वह स्मृति भी अप्रमाण ही है । आर्षज्ञान ही स्मृतिका मूल है, यह नहीं कह सकते हैं, क्योंकि वह ज्ञान भी प्रत्यक्षविषयक अथवा शब्दविषयक होगा, महदादिका, लोक और वेदमें प्रसिद्ध न होनेके कारण, ज्ञान ही नहीं हो सकता ।

भाष्य

न्द्रियार्थस्य न स्मृतिरवकल्पते । यदपि क्वचित् तत्परमिव श्रवणमवभासते तदप्यतत्परं व्याख्यातम् 'आनुमानिकमप्येकेषाम्' (ब्र० १।४।१) इत्यत्र । कार्यस्मृतेरप्रामाण्यात् कारणस्मृतेरप्यप्रामाण्यं युक्तमित्यभिप्रायः । तस्मादपि न स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गो दोषः । तर्काविष्टम्भं तु 'न विलक्षणत्वात्' (ब्र० २।१।४) इत्यारभ्योन्मथिष्यति ॥ २ ॥

भाष्यका अनुवाद

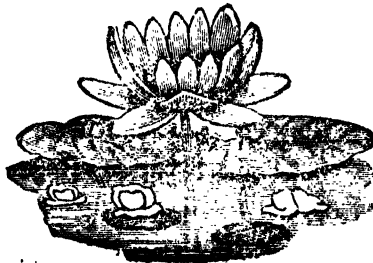
स्मृतिमें प्रतिपादन संभव नहीं है । कहीं कहीं श्रुति महद् आदिका प्रतिपादन करती हुई-सी जो भासती है, उसका भी 'आनुमानिक०' सूत्रमें 'श्रुति महद् आदिका प्रतिपादन नहीं करती' ऐसा व्याख्यान किया गया है । कार्य-महद् आदिकी स्मृतिके अप्रमाण होनेसे कारण-प्रधानकी स्मृति भी अप्रमाण है, यह युक्त है, ऐसा अभिप्राय है । इसलिए भी स्मृत्यनवकाशप्रसंग दोष नहीं है । तर्कके अवलम्बनका तो सूत्रकार 'न विलक्षणत्वात्' इस सूत्रसे लेकर खण्डन करेंगे ॥ २ ॥

रत्नप्रभा

प्रसिद्धानि महादादीनि इत्यत आह—यदपीति । सूत्रतात्पर्यमाह—कार्येति । सांख्यस्मृतेः महदादिष्विव प्रधानेऽपि प्रामाण्यं नेति निश्चीयते इत्यर्थः । सांख्यस्मृति-बाधेऽपि तदुक्तयुक्तीनां कथं बाध इत्यत आह—तर्केति ॥ २ ॥ (१) ॥

रत्नप्रभाका अनुवाद

निराकरण करते हैं—“यदपि” इत्यादिसे । सूत्रका तात्पर्य कहते हैं—“कार्य” इत्यादिसे । सांख्यस्मृति जैसे महदादिमें प्रमाण नहीं है, वैसे ही प्रधानमें भी प्रमाण नहीं है, ऐसा निश्चय होता है, यह अर्थ है । परन्तु सांख्यस्मृतिका बाध होनेपर भी उसमें कहीं हुई युक्तियोंका बाध किस प्रकार होता है ? इसपर कहते हैं—“तर्क” इत्यादि ॥ २ ॥



[२ योगप्रत्युत्तयधिकरण सू० ३]

योगस्मृत्याऽस्ति संकोचो न वा योगो हि वैदिकः ।

तत्त्वज्ञानोपयुक्तश्च ततः संकुच्यते तथा ॥१॥

प्रमापि योगे तात्पर्यदितात्पर्याच्च सा प्रमा ।

अवैदिके प्रधानादावसंकोचस्तयाऽप्यतः* ॥२॥

[अधिकरणसार]

सन्देह—वेदसमन्वयका योगस्मृतिसे संकोच होता है या नहीं ?

पूर्वपक्ष—योग श्रुतिप्रतिपादित है और तत्त्वज्ञानमें उपयोगी है, इसलिए योगशास्त्रसे वेदका संकोच होना युक्त है ।

सिद्धान्त—योगस्मृति अष्टाङ्गयोगमें तात्पर्य रखती है अतः उस विषयमें प्रमाण होनेपर भी अवैदिक प्रधान आदिमें तात्पर्य न होनेके कारण प्रमाण नहीं है । इसलिए योगस्मृतिसे भी वेदका संकोच होना युक्त नहीं है ।

* तात्पर्य यह है कि पूर्वपक्षी कहता है कि योगस्मृति—पतञ्जलि मुनिप्रणीत योगशास्त्रमें कथित अष्टाङ्गयोग प्रत्यक्ष वेदमें भी उपलब्ध होता है, क्योंकि इवेताद्वतर आदि शाखाओंमें योगका विस्ताररूपसे वर्णन है । और योग तत्त्वज्ञानका उपयोगी है, क्योंकि 'दृश्यते त्वग्रथया बुद्ध्या' (एकाग्र बुद्धिमें देखा जाता है) इस प्रकार श्रुतिमें योगसे साध्य चित्तैकाग्रता ब्रह्मसाक्षात्कारके प्रति कारण कही गई है । इसलिए योगशास्त्र प्रमाणभूत है । वह योगशास्त्र प्रधानको जगत्कारण कहता है, इसलिए योगशास्त्रसे वेदका संकोच होना युक्त है ।

सिद्धान्ती कहते हैं कि योगशास्त्रका अष्टाङ्गयोगमें तात्पर्य है इसलिए योगमें प्रमाणभूत है, तो भी अवैदिक प्रधानमें प्रमाण नहीं है, क्योंकि प्रधान प्रतिपादनमें योगशास्त्रका तात्पर्य नहीं है । योगशास्त्रमें 'अथ योगानुशासनम्' (योगका शासन आरम्भ होता है) देसी प्रतिज्ञा करके योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' (चित्तकी वृत्तियोंका निरोध करनेवाला अवस्थाविशेष योग है) इस प्रकार योगका ही लक्षण कह कर उसी योगका सम्पूर्ण शास्त्रमें विस्ताररूपसे प्रतिपादन किया गया है, इसलिए वह योगमें प्रमाण है । प्रधान आदिके प्रतिपादनमें प्रतिज्ञा नहीं है, किन्तु यम, नियम आदि साधनोंके प्रतिपादक दूसरे पादमें त्याज्य और त्याज्यके कारण एवं दुःख और दुःखके कारणोंके प्रतिपादनके अवसरमें प्रसंगात् सांख्यस्मृतिमें प्रसिद्ध प्रधान आदि कहे गये हैं, इसलिए प्रधान आदिमें योगशास्त्रका तात्पर्य नहीं है । इस कारण योगस्मृतिसे वेदका संकोच होना युक्त नहीं है ।

एतेन योगः प्रत्युक्तः ॥ ३ ॥

पदच्छेद—एतेन, योगः, प्रत्युक्तः ।

पदार्थोक्ति—एतेन—सांख्यस्मृतिप्रत्याख्यानेन, योगः—योगस्मृतिरपि,
प्रत्युक्तः—प्रत्याख्याता द्रष्टव्या ।

भाषार्थ—सांख्यस्मृतिके निराकरणसे योगस्मृतिका भी निराकरण
समझना चाहिए ।

भाष्य

एतेन सांख्यस्मृतिप्रत्याख्यानेन योगस्मृतिरपि प्रत्याख्याता द्रष्टव्ये-
त्यतिदिशति । तत्रापि श्रुतिविरोधेन प्रधानं स्वतन्त्रमेव कारणम्, महादा-
दीनि च कार्याण्यलोकवेदप्रसिद्धानि कल्पन्ते । नन्वेवं सति समान-
न्यायात्वात् पूर्वैवैतद्गतं किमर्थं पुनरतिदिश्यते । अस्ति ह्यत्राभ्यधिकाऽऽ-
शङ्का । सम्यग्दर्शनाभ्युपायो हि योगो वेदे विहितः 'श्रोतव्यो मन्तव्यो

भाष्यका अनुवाद

इस सांख्यस्मृतिके निराकरणसे योगस्मृति भी निराकृत हुई, ऐसा समझना
चाहिए इस प्रकार सूत्रकार इस सूत्रमें पूर्वन्यायका अतिदेश करते हैं। योगमें
भी प्रधान ही स्वतंत्र कारण है, एवं लोक और वेदमें अप्रसिद्ध महत् आदि
कार्य हैं, ऐसी श्रुतिविरुद्ध कल्पना की गई है। यदि ऐसा हो, तो एक ही
न्याय होनेसे पूर्व अधिकरणमें ही यह आ गया, पुनः इसका अतिदेश क्यों
किया जाता है? इसलिए कि यहां अधिक शंका है, 'श्रोतव्यो मन्तव्यो०'

रत्नप्रभा

ब्रह्मणि उक्तसमन्वयः प्रधानवादियोगस्मृत्या विरुध्यते न वेति सन्देहे पूर्व-
न्यायम् अतिदिशति—एतेन योगः प्रत्युक्तः इति । अतिदेशत्वात् पूर्ववत्
सङ्गत्यादिकं द्रष्टव्यम् । पूर्वत्र अनुक्तनिरासं पूर्वपक्षमाह—अस्ति ह्यत्रेति ।

रत्नप्रभाका अनुवाद

ब्रह्ममें जो समन्वय कहा है, उसका प्रधानको जगत्कारण माननेवाली योगस्मृतिसे
विरोध है या नहीं, ऐसा संशय होनेपर पूर्वन्यायका अतिदेश करते हैं—“एतेन योगः
प्रत्युक्तः” । यह अतिदेश सूत्र है, इसलिए इस अधिकरणकी अध्याय आदि संगतियों
पूर्व अधिकरणके समान ही समझनी चाहिए। पूर्व अधिकरणमें जिसका निराकरण नहीं

भाष्य

निदिध्यासितव्यः' (बृ०२।४।५) इति । 'त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरम्' (श्वे०२।८) इत्यादिना चाऽऽसनादिकल्पनापुरःसरं बहुप्रपञ्चं योगविधानं श्वेताश्वतरोपनिषदि दृश्यते । लिङ्गानि च वैदिकानि योगविषयाणि सहस्रश उपलभ्यन्ते 'तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्' (का०२।६।११) इति । 'विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् (का०२।६।१८) इति चैवमादीनि । योगशास्त्रेऽपि 'अथ तत्त्वदर्शनाभ्युपायो योगः' इति

भाष्यका अनुवाद

(आत्मका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए) इस प्रकार वेदमें साक्षात्कारके साधनरूपसे योगका विधान किया है । 'त्रिरुन्नतं०' (तीन—वक्षःस्थल, ग्रीवा और सिर जिसमें ऊँचे हैं, ऐसे शरीरको समान रखकर योग करे) इत्यादिसे आसन आदिकी कल्पनापूर्वक विस्ताररूपसे योगका विधान श्वेताश्वतर उपनिषद्में किया गया है । और 'तां योगमिति मन्यन्ते०' (उस स्थिर इन्द्रिय धारणाको योग कहते हैं) 'विद्यामेतां०' (इस ब्रह्मविद्या और अखिल योगविधिको मृत्युके प्रसादसे प्राप्त करके नचिकेताने ब्रह्मको प्राप्त किया) इत्यादिमें योगके वैदिक लिंग हजारों दिखाई देते हैं । योगशास्त्रमें भी 'अथ तत्त्वदर्शनाभ्युपायो०' (योग तत्त्वदर्शनका उपाय है) इस प्रकार योग

रत्नप्रभा

निदिध्यासनम्—योगः । त्रीणि उरोग्रीवाशिरांसि उन्नतानि यस्मिन् शरीरे तत् त्र्युन्नतम् । त्रिरुन्नतमिति पाठश्चेच्छान्दसः । युञ्जीतेति शेषः । न केवलं योगे विधिः, किन्तु योगस्य ज्ञापकानि अर्थवादवाक्यान्यपि सन्तीत्याह—लिङ्गानि चेति । तां पूर्वोक्तां धारणां योगविदो योगं परमं तप इति मन्यन्ते । उक्तामेतां ब्रह्मविद्यां योगविधिं ध्यानप्रकारं च मृत्युप्रसादात् नचिकेता लब्ध्वा

रत्नप्रभाका अनुवाद

किया, ऐसा पूर्वपक्ष कहते हैं—“अस्ति ह्यत्र” इत्यादिसे । निदिध्यासन—योग । तीन—वक्षःस्थल, ग्रीवा और सिर जिसमें उन्नत हैं, ऐसा शरीर 'त्र्युन्नत' है । यदि 'त्रिरुन्नतम्' पाठ हो, तो उसे छान्दस समझना चाहिए । श्वेताश्वतर उपनिषद्के मंत्रमें 'युञ्जीत' इतना शेष समझना चाहिए । वेदमें योग विषयक केवल विधिवाक्य ही नहीं है, किन्तु योगके ज्ञापक अर्थवादवाक्य भी हैं, ऐसा कहते हैं—“लिङ्गानि च” इत्यादिसे । उस पूर्वोक्त धारणाको योगवेत्ता परम तप कहते हैं । पूर्वोक्त इस ब्रह्मविद्या और योगविधि—ध्यान प्रकारको मृत्युके प्रसादसे

भाष्य

सम्यग्दर्शनाभ्युपायत्वेनैव योगोऽङ्गीक्रियते । अतः संप्रतिपन्नार्थैकदेश-
त्वादष्टकादिस्मृतिवद् योगस्मृतिरप्यनपवदनीया भविष्यतीति । इयमप्य-
धिका शङ्काऽतिदेशेन निवर्त्यते, अर्थैकदेशसम्प्रतिपत्तावप्यर्थैकदेशविप्रतिपत्तेः
पूर्वोक्ताया दर्शनात् । सतीष्वप्यध्यात्मविषयासु बह्वीषु स्मृतिषु साङ्ख्य-
योगस्मृत्योरेव निराकरणे यत्नः कृतः । साङ्ख्ययोगौ हि परमपुरुषार्थसाधन-

भाष्यका अनुवाद

सम्यग्दर्शनका उपाय माना गया है । इसलिए योगस्मृतिके अर्थकी एकदेशमें
संप्रतिपत्ति होनेसे अष्टका आदि स्मृतियोंके समान योगस्मृति भी अनिराकरणीय
सिद्ध होगी । यह भी अधिक शंका अतिदेशसे निवृत्त की जाती है, क्योंकि
अर्थके एकदेशमें संप्रतिपत्ति होनेपर भी अर्थके एकदेशमें पूर्वोक्त विप्रतिपत्ति
दिखाई देती है । अध्यात्मविषयक बहुत स्मृतियाँ हैं, तो भी सांख्य स्मृति और
योगस्मृतिके निराकरणमें ही यत्न किया है, क्योंकि सांख्य और योग परम-

रत्नप्रभा

ब्रह्म प्राप्त इति सम्बन्धः । योगस्मृतिः प्रधानादितत्त्वांशेऽपि प्रमाणत्वेन स्वीकार्या,
सम्प्रतिपन्नः—प्रामाणिकोऽर्थैकदेशो योगरूपो यस्याः तत्त्वादित्यर्थः । “अष्टकाः
कर्तव्याः” “गुरुरनुगन्तव्यः” इत्यादिस्मृतीनां वेदाविरुद्धार्थकत्वाद् मूलश्रुत्य-
नुमानेन प्रामाण्यमुक्तं प्रमाणलक्षणे । एवं योगस्मृतेर्योगे प्रामाण्यात् तत्त्वांशेऽपि
प्रामाण्यम् इति पूर्वपक्षम् अनूद्य सिद्धान्तयति—इयमपीति । ननु बौद्धादि-
स्मृतयोऽत्र किमिति न निराकृता इत्यत आह—सतीष्वपीति । तासां प्रतारकत्वेन
प्रसिद्धत्वाद् अशिष्टैः पशुप्रायैः गृहीतत्वाद् वेदबाह्यत्वाच्च अत्रोपेक्षा इति भावः ।

रत्नप्रभाका अनुवाद

जान कर नचिकेताने ब्रह्मको प्राप्त किया, ऐसा संबन्ध है । योगस्मृतिको प्रधान आदि
तत्त्वोंके अंशमें भी प्रमाण मानना चाहिए, क्योंकि उसका अर्थैकदेश योग प्रामाणिक है
ऐसा अर्थ है । ‘अष्टकाः’ (अष्टका श्राद्ध करना चाहिए) ‘गुरुरनुगन्तव्यः’ (गुरुका अनुसरण
करना चाहिए) इत्यादि स्मृतियाँ वेदसे अवरुद्ध अर्थका प्रतिपादन करती हैं, इसलिए प्रमाण-
लक्षणमें मूलश्रुतिके अनुमानसे उन स्मृतियोंका प्रामाण्य कहा गया है । इसी प्रकार
योगस्मृति भी योगमें प्रमाण होनेसे तत्त्वांशमें भी प्रमाण है, इस पूर्वपक्षका अनुवाद करके
सिद्धान्त करते हैं—“इयमपि” इत्यादिसे । यदि कोई कहे कि यहाँ बौद्ध आदि स्मृतियोंका
निराकरण क्यों नहीं किया गया है, इसपर कहते हैं—“सतीष्वपि” इत्यादि । आशय यह
है कि बौद्ध आदि स्मृतियाँ वंचकरूपसे प्रसिद्ध हैं, वेदका प्रमाण न माननेवाले पशुप्राय नरोंसे

भाष्य

त्वेन लोके प्रख्यातौ, शिष्टैश्च परिगृहीतौ, लिङ्गेन च श्रौतेनोपबृंहितौ—
‘तत्कारणं सांख्ययोगामिपन्नं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः’ (श्वे० ६।१३)
इति । निराकरणं तु न सांख्यस्मृतिज्ञानेन वेदनिरपेक्षेण योगमार्गेण वा
निःश्रेयसमधिगम्यत इति । श्रुतिर्हि वैदिकादात्मैकत्वविज्ञानादन्यन्निः-
श्रेयससाधनं वारयति ‘तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽ-
यनाय’ (श्वे० ३।८) इति । द्वैतिनो हि ते सांख्या योगाश्च नाऽऽत्मै-
कत्वदर्शिनः । यत्तु दर्शनमुक्तम्—तत्कारणं सांख्ययोगामिपन्नम् इति,
वैदिकमेव तत्र ज्ञानं ध्यानं च सांख्ययोगशब्दाभ्यामभिलप्येते प्रत्यासत्ते-

भाष्यका अनुवाद

पुरुषार्थके साधनरूपसे लोकमें प्रख्यात हैं, शिष्टों द्वारा परिगृहीत हैं और
‘तत्कारणं सांख्ययोगामिपन्नं’ (उन कर्मोंके कारण सांख्य और योगसे प्राप्त
हुए देवको जानकर पुरुष सब पाशोंसे मुक्त हो जाता है) इत्यादि श्रौतलिङ्गसे
पुष्ट हैं । वेदनिरपेक्ष सांख्यज्ञानसे या योगमार्गसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता, इस
हेतुसे निराकरण किया गया है । ‘तमेव विदित्वातिमृत्युमेति’ (उसीको
जानकर मृत्युसे छुटकारा पाता है, मोक्षके लिए अन्य मार्ग नहीं है) यह श्रुति
वैदिक आत्मैकत्वविज्ञानको छोड़कर दूसरा मोक्षका साधन नहीं है, ऐसा प्रति-
पादन करती है । इसमें सन्देह नहीं है कि सांख्य और पातञ्जल द्वैतमार्गी हैं,
आत्माको एक माननेवाले नहीं हैं । ‘तत्कारणं सांख्ययोगामिपन्नम्’ इत्यादि
जो दर्शन कहा गया है, उसमें सांख्य और योगशब्दोंसे सान्निध्यके कारण

रत्नप्रभा

तत्कारणमिति । तेषां प्रकृतानां कामानां कारणं सांख्ययोगाभ्यां विवेकध्याना-
भ्याम् अभिपन्नं प्रत्यक्तया प्राप्तं देवं ज्ञात्वा सर्वपाशैः अविद्यादिभिः मुच्यते
इत्यर्थः । समूलत्वे स्मृतिद्वयस्य निरासः किमिति कृत इत्यत आह—
निराकरणन्त्विति । इति हेतोः कृतमिति शेषः । प्रत्यासत्तेरिति । श्रुतिस्थ-

रत्नप्रभाका अनुवाद

स्वीकृत हैं और वेदबाह्य हैं, इसलिये यहाँ उनकी उपेक्षा की गई है । “तत्कारणम्” इत्यादि ।
उनका अर्थात् प्रकृत कामनाओंके कारण, विवेक और ध्यानसे प्रत्यग्रूपसे प्राप्त देवको
जान कर अविद्या आदि पाशोंसे मुक्त हो जाता है, यह ‘तत्कारणम्’ इत्यादि श्रुतिको अर्थ है ।
यदि सांख्यस्मृति और योगस्मृति श्रुतिमूलक हैं, तो उनका निराकरण क्यों किया गया, इस
पर कहते हैं—“निराकरणं तु” इत्यादि । ‘इति’ के बाद ‘हेतोः कृतम्’ (कारणसे किया गया)

भाष्य

रित्यवगन्तव्यम् । येन त्वंशेन न विरुध्येते तेनेष्टमेव सांख्ययोगस्मृत्योः सावकाशत्वम् । तद्यथा—‘असङ्गो ह्ययं पुरुषः’ (बृ० ४।३।१६) इत्येवमादिश्रुतिप्रसिद्धमेव पुरुषस्य विशुद्धत्वं निर्गुणपुरुषनिरूपणेन सांख्यैरभ्युपगम्यते । तथा च योगैरपि ‘अथ परिव्राड् विवर्णवासा मुण्डोऽपरिग्रहः’ (जाबा० ५) इत्येवमादि श्रुतिप्रसिद्धमेव निवृत्तिनिष्ठत्वं प्रव्रज्याद्युपदेशेनाऽनुगम्यते । एतेन सर्वाणि तर्कस्मरणानि प्रतिवक्तव्यानि । तान्यपि तर्कोपपत्तिभ्यां तत्त्वज्ञानायोपकुर्वन्तीति चेदुपकुर्वन्तु नाम । तत्त्वज्ञानं तु वेदान्तवाक्येभ्य एव भवति ‘नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्’

भाष्यका अनुवाद

वैदिक ज्ञान और ध्यान ही कहे गये हैं, ऐसा समझना चाहिए । जितने अंशमें सांख्य और योगस्मृतिका श्रुतिसे विरोध नहीं है, उतने अंशमें उनका प्रामाण्य इष्ट ही है । जैसे ‘असङ्गो’ (यह आत्मा निश्चय असङ्ग है) इत्यादि श्रुतियोंमें प्रसिद्ध ही आत्माके विशुद्धत्वका निर्गुण आत्माके निरूपणसे सांख्य स्वीकार करते हैं । उसी प्रकार योगदर्शनवाले भी ‘अथ परिव्राड्’ (परिव्राजकको काषाय वस्त्र पहनना चाहिए, सिर मुण्डित रखना चाहिए, किसीका परिग्रह नहीं करना चाहिए) इत्यादि श्रुतिप्रसिद्ध निवृत्तिमार्गका ही प्रव्रज्या आदिके उपदेशसे अनुसरण करते हैं । इससे सब तर्कस्मृतियों का निराकरण करना चाहिए । वे भी तर्क और युक्तिसे तत्त्वज्ञानके उपकारक होते हैं, यदि ऐसा कहो, तो भले उपकारक हों । परन्तु ‘नावेदविन्मनुते’ (अवेदज्ञ उस ब्रह्मको नहीं जानता)

रत्नप्रभा

सांख्ययोगशब्दयोः सजातीयश्रुत्यर्थग्राहित्वादिति यावत् । किं सर्वांशेषु स्मृत्य-प्रामाण्यम् ? नेत्याह—येन त्वंशेनेति । ब्रह्मवादस्य कणभक्षादिस्मृतिभिः विरोधमाशङ्क्याऽतिदिशति—एतेनेति । श्रुतिविरोधेन इत्यर्थः । उपकारकबाधो न युक्त इत्याशङ्क्य यः अंश उपकारकः स न बाध्यः किन्तु तत्त्वांश इत्याह—तान्यपीति ।

रत्नप्रभाका अनुवाद

इतना शेष समझना चाहिए । “प्रत्यासत्तेः” अर्थात् श्रुतिस्थ सांख्य और योग शब्द सजातीय श्रुत्यर्थका ग्रहण कराते हैं । तब क्या स्मृति सभी अंशोंमें अप्रमाण है ? नहीं, ऐसा कहते हैं—“येन त्वंशेन” इत्यादिसे । ब्रह्मवादका वैशेषिक आदि मतोंके साथ विरोध है, ऐसी आशंका करके पूर्व न्यायका आतिदेश करते हैं—“एतेन” इत्यादिसे । एतेन—श्रुतिविरोधसे । उपकारकका बाध करना युक्त नहीं है, ऐसी आशंका करके जो अंश

भाष्य

(तै० ब्रा० ३।१२।९।७) 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' (बृ० ३।९।२६)
इत्येवमादिश्रुतिभ्यः ॥३॥

भाष्यका अनुवाद

'तं त्वौपनिषदं०' (मैं उस उपनिषद्भूम्य आत्माको पूछता हूँ) इत्यादि श्रुतियोंसे प्रतीत होता है कि तत्त्वज्ञान तो वेदान्तवाक्योंसे ही होता है ॥ ३ ॥

रत्नप्रभा

तर्कः—अनुमानम् । तदनुग्राहिका युक्तिः—उपपत्तिः, स्मृतीनाम् अप्रामाण्यात्
ताभिः समन्वयस्य न विरोध इति सिद्धम् ॥ ३ ॥ (२)

रत्नप्रभाका अनुवाद

उपकारक है, वह बाध्य नहीं है, किन्तु तत्त्वांश बाध्य है, ऐसा कहते हैं—“तान्यपि”
इत्यादिसे । तर्क—अनुमान । उपपत्ति—तर्ककी अनुग्राहिका युक्ति, स्मृतियोंके अप्रमाण होनेसे
पूर्वोक्त समन्वयका उनसे विरोध नहीं है ॥३॥



[३ विलक्षणत्वाधिकरण सू० ४—१२]

वैलक्षण्याख्यतर्केण बाध्यतेऽथ न बाध्यते ।

बाध्यते साम्यनियमात् कार्यकारणवस्तुनोः ॥१॥

मृद्घटादौ समत्वेऽपि दृष्टं वृश्चिककेशयोः ।

स्वकारणेन वैषम्यं तर्काभासो न बाधकः* ॥२॥

[अधिकरणसार]

सन्देह—वेदसमन्वयका वैलक्षण्यरूप तर्कसे बाध होता है अथवा नहीं ?

पूर्वपक्ष—यह नियम है कि कार्य और कारणकी समानता होनी चाहिए, इसलिए समन्वय बाधित होता है ।

सिद्धान्त—घटरूप कार्य यद्यपि अपने कारणभूत मृत्के समान देखा जाता है, तथापि वृश्चिक और केशरूप कार्य अपने कारणसे विषम देखे जाते हैं, इसलिए वैलक्षण्य तर्काभास है बाधक नहीं है ।

* तात्पर्य यह है कि पूर्वपक्षी कहता है—ब्रह्ममें जो वेदान्तोंका समन्वय कहा गया है, उसमें तर्क बाधक है । अचेतन जगत् चेतन ब्रह्मसे उत्पन्न नहीं हो सकता, क्योंकि जगत् ब्रह्मसे विलक्षण है । जो जिससे विलक्षण होता है, वह उससे उत्पन्न नहीं होता, जैसे गौसे मदिष, इस तर्कसे समन्वय बाधित होता है ।

सिद्धान्ती कहते हैं कि कार्य और कारण समानस्वरूपवाले होते हैं, इस व्याप्तिका वृश्चिक आदिमें व्यभिचार देखा जाता है, क्योंकि अचेतन गौमयसे चेतन वृश्चिक उत्पन्न होता है और चेतन मनुष्यसे अचेतन केश, नख आदि उत्पन्न होते हैं, इसलिए वेदानिरपेक्ष शुष्क तर्क कहीं प्रतिष्ठित नहीं है । आचार्य कहते हैं—

“यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमावृभिः ।

अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते ॥”

अर्थात् अनुमान करनेवाले कुशल पुरुषोंसे प्रयत्नपूर्वक जो अर्थ अनुमान द्वारा सिद्ध किया जाता है, उसे भी और अधिक तीक्ष्णबुद्धिवाले अन्यथा कर देते हैं । इसलिए वैलक्षण्यरूप हेतु तर्काभास होनेसे समन्वयका बाधक नहीं है ।

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ॥४॥

पदच्छेद—न, विलक्षणत्वात्, अस्य, तथात्वम्, च, शब्दात् ।

पदार्थोक्ति—न—न जगत् चेतनप्रकृतिकम् [कुतः] अस्य—अचेतनस्य जगतः, विलक्षणत्वात्—चेतनाद्विलक्षणत्वात् । तथात्वं च—वैलक्षण्यं च, शब्दात्—‘विज्ञानं चाविज्ञानं च’ इत्यादिश्रुतितोऽवगम्यते ।

भाषार्थ—यह जगत् चेतनप्रकृतिक अर्थात् चेतन जिसका उपादानकारण है, ऐसा नहीं है, क्योंकि अचेतन जगत् चेतन ब्रह्मसे विलक्षण है । ब्रह्म और जगत्का वैलक्षण्य तो ‘विज्ञानं०’ (चेतन और अचेतन) इत्यादि श्रुतिसे जाना जाता है ।

भाष्य

ब्रह्माऽस्य जगतो निमित्तकारणं प्रकृतिश्चेत्यस्य पक्षस्याऽऽक्षेपः स्मृति-निमित्तः परिहृतः । तर्कनिमित्त इदानीमाक्षेपः परिह्रियते । कुतः पुनरस्मिन्नवधारित आगमार्थे तर्कनिमित्तस्याऽऽक्षेपस्याऽवकाशः । ननु धर्म इव ब्रह्मण्यप्यनपेक्ष आगमो भवितुमर्हति । भवेदयमवष्टम्भो यदि प्रमा-

भाष्यका अनुवाद

ब्रह्म इस जगत्का निमित्तकारण और उपादानकरण है, इस पक्षमें सांख्य आदि स्मृतियोंसे होनेवाले आक्षेपका परिहार किया जा चुका है । अब तर्कसे आक्षेपका परिहार करते हैं । परन्तु निश्चित वेदार्थमें तर्कसे होनेवाले आक्षेपका अवसर ही कहां है ? क्योंकि वेद जैसे धर्ममें स्वतःप्रमाण है, वैसे ही

रत्नप्रभा

न विलक्षणत्वाद् । वृत्तानुवादेनाऽस्याऽधिकरणस्य तात्पर्यमाह—ब्रह्माऽस्येति । पूर्वपक्षमाक्षिपति—कुतः पुनरिति । अनवकाशे हेतुमाह—ननु धर्म इवेति । मानान्तरानपेक्षे वेदैकसमधिगम्ये ब्रह्मणि अनुमानात्मकतर्कस्याऽप्रवेशः, तेन आक्षेपस्य अनवकाशः भिन्नविषयत्वात् तर्कवेदयोः इत्यर्थः । सिद्धस्य माना-

रत्नप्रभाका अनुवाद

“विलक्षणत्वात्” । वृत्तका अनुवाद करके इस अधिकरणका तात्पर्य कहते हैं—“ब्रह्माऽस्य” इत्यादिसे । पूर्वपक्षपर आक्षेप करते हैं—“कुतः पुनः” इत्यादिसे । अनवकाशमें हेतु कहते हैं—“ननु धर्म इव” इत्यादिसे । अन्य प्रमाणकी अपेक्षा जिसमें नहीं है और केवल वेदसे

भाष्य

णान्तरानवगाह्य आगममात्रप्रमेयोऽयमर्थः स्यादनुष्ठेयरूप इव धर्मः । परिनिष्पन्नरूपं तु ब्रह्माऽवगम्यते । परिनिष्पन्ने च वस्तुनि प्रमाणान्तराणामस्त्यवकाशो यथा पृथिव्यादिषु । यथा च श्रुतीनां परस्परविरोधे सत्येकवशेनेतरा नीयन्ते, एवं प्रमाणान्तरविरोधेऽपि तद्वशेनैव श्रुतिर्नीयेत । दृष्टसाम्येन चाऽदृष्टमर्थं समर्थयन्ती युक्तिरनुभवस्य संनिकृष्यते । विप्र-

भाष्यका अनुवाद

ब्रह्ममें भी स्वतःप्रमाण है । यह दृष्टान्त तभी घट सकता है यदि अनुष्ठेय धर्मके समान ब्रह्म भी प्रमाणान्तरसे अज्ञेय और केवल वेदसे ज्ञेय हो । ब्रह्म तो सिद्ध वेदसे समझा जाता है । पृथिवी आदिके समान सिद्ध वस्तुमें अन्य प्रमाणोंका अवकाश है । और जैसे श्रुतियोंमें परस्पर विरोध उपस्थित होनेपर एक श्रुतिके अनुसार अन्य श्रुतियोंका अर्थ किया जाता है, वैसे अन्य प्रमाणोंके साथ श्रुतिका विरोध होनेपर उनके अनुसार ही

रत्नप्रभा

न्तरगम्यत्वाद् एकविषयत्वाद् विरोध इति पूर्वपक्षं समर्थयते—भवेदयमिति । अवष्टम्भः—दृष्टान्तः । ननु एकविषयत्वेन विरोधेऽपि श्रुतिविरोधाद् मानान्तरमेव बाध्यतामित्यत आह—यथा चेति । प्रबलश्रुत्या दुर्बलश्रुतिबाधवत् निरवकाशमानान्तरेण लक्षणावृत्त्या सावकाशश्रुतिनयनं युक्तमित्यर्थः । किञ्च, ब्रह्मसाक्षात्कारस्य मोक्षहेतुत्वेन प्रधानस्य अन्तरङ्गं तर्कः तस्य अपरोक्षदृष्टान्तगोचरत्वेन प्रधानवत् अपरोक्षार्थविषयत्वात्, शब्दस्तु परोक्षार्थकत्वाद् बहिरङ्गम् अतः तर्केण बाध्य इत्याह—दृष्टेति । ऐतिह्यमात्रेण—परोक्षतयेति यावत् । अनुभवस्य

रत्नप्रभाका अनुवाद

ज्ञात होनेवाले ब्रह्ममें अनुमानरूप तर्कका प्रवेश नहीं है, इसलिए आक्षेपका अवसर नहीं है क्योंकि तर्क और वेदके विषय भिन्न हैं । जो सिद्ध वस्तु है, वह अन्य प्रमाणसे गम्य है, इसलिए तर्क और वेदका विषय एक होनेसे विरोध संभव है, इस प्रकार पूर्वपक्षका समर्थन करते हैं—“भवेदयम्” इत्यादि । अवष्टम्भ—दृष्टान्त । दोनोंका विषय एक होनेसे विरोध होनेपर भी श्रुतिका विरोध हो, तो अन्य प्रमाणका ही बाध होना चाहिए, इसपर कहते हैं—“यथा च” इत्यादि । जैसे प्रबल श्रुतिसे दुर्बल श्रुतिका बाध होता है, वैसे ही निरवकाश अन्य प्रमाणसे लक्षणावृत्ति द्वारा सावकाश श्रुतिका अर्थ करना ही युक्त है, ऐसा अर्थ है । ब्रह्मसाक्षात्कार मोक्षका साधन होनेसे प्रधान है और तर्क उसका अन्तरङ्ग है, क्योंकि वह अपरोक्ष—प्रत्यक्षभूत दृष्टान्तविषयक होता है अर्थात् प्रत्यक्ष दृष्टान्तकी अपेक्षा रखता है, अतः प्रधानभूत ब्रह्मसाक्षात्कारके समान अपरोक्षार्थ विषयक है, श्रुति तो परोक्षार्थविषयक

भाष्य

कृष्यते तु श्रुतिरैतिह्यमात्रेण स्वार्थाभिधानात् । अनुभवावसानं च ब्रह्म-
विज्ञानमविद्याया निवर्तकं मोक्षसाधनं च दृष्टफलतयेष्यते । श्रुतिरपि
'श्रोतव्यो मन्तव्यः' इति श्रवणव्यतिरेकेण मननं विदधती तर्कमप्यत्राऽऽ-
दत्तव्यं दर्शयति । अतस्तर्कनिमित्तः पुनराक्षेपः क्रियते 'न विलक्षणत्वा-
दस्य' इति । यदुक्तम्—चेतनं ब्रह्म जगतः कारणं प्रकृतिः इति । तन्नो-
पपद्यते । कस्मात् ? विलक्षणत्वादस्य विकारस्य प्रकृत्याः । इदं हि

भाष्यका अनुवाद

श्रुतिका अर्थ करना उचित है । अनुभूत अर्थके सादृश्यसे अदृष्ट अर्थका समर्थन करनेवाली युक्ति अनुभवसे संनिकृष्ट है । श्रुति तो ऐतिह्यमात्रसे स्वार्थका अभिधान करती है, इसलिए अनुभवसे दूर है और दृष्टफलक होनेके कारण अविद्या निवर्तक और मोक्षसाधन ब्रह्मविज्ञानका अन्तिम फल अनुभव ही माना गया है । श्रोतव्यो' (श्रवण और मनन करना चाहिए) इस प्रकार श्रवणसे भिन्न मननका विधान करनेवाली श्रुति भी तर्कका आदर करना युक्त है, ऐसा दिखलाती है । इसलिए 'न विलक्षणत्वादस्य' इस सूत्रसे तर्क-

रत्नप्रभा

प्रधान्यं दर्शयति—अनुभवावसानञ्चेति । नैषा तर्केण मतिरित्यर्थवादेन तर्कस्य निषेधमाशङ्क्य विधिविरोधाद् मैवमित्याह—श्रुतिरपीति । एवं पूर्वपक्षं सम्भाव्य चेतनब्रह्मकारणवादिवेदान्तसमन्वयः, क्षित्यादिकं न चेतनप्रकृतिकम्, कार्यद्रव्यत्वाद्, घटवदिति सांख्ययोगन्यायेन विरुध्यते न वा इति सन्देहे स्मृतेः मूलाभावाद् दुर्बलत्वेऽपि अनुमानस्य व्याप्तिमूलत्वेन प्राबल्यात् तेन विरुध्यते इति प्रत्युदाहरणेन पूर्वपक्षयति—न विलक्षणत्वादिति । पूर्वोत्तरपक्षयोः

रत्नप्रभाका अनुवाद

होती है, ऐसा कहते हैं—“दृष्ट” इत्यादिसे । ऐतिह्यमात्रसे—परोक्ष रीतिसे, प्रवाहपरंपरा मात्रसे । अनुभवका प्राधान्य दिखलाते हैं—“अनुभवावसानं च” इत्यादि । 'नैषा तर्केण०' इस अर्थवादसे तर्कके निषेधकी आशंका करके “श्रुतिरपि” इत्यादिसे कहते हैं कि अर्थवाद विधिसे विरुद्ध है, अतः यह आशंका युक्त नहीं है । इस प्रकार पूर्वपक्षकी संभावना करके चेतनब्रह्मकारणवादीका वेदान्तसमन्वय सांख्य, योग सिद्धान्तसे विरुद्ध है या नहीं, ऐसा संशय होनेपर स्मृतिकी मूलभूत श्रुतिके न होनेसे उसके दुर्बल होनेपर भी 'क्षिति आदि चेतनप्रकृतिक नहीं है, कार्य द्रव्य होनेसे, घटके समान' इस अनुमानके व्याप्तिमूलक

भाष्य

ब्रह्मकार्यत्वेनाऽभिप्रेयमाणं जगत् ब्रह्मविलक्षणमचेतनमशुद्धं च दृश्यते । ब्रह्म च जगद्विलक्षणं चेतनं शुद्धं च श्रूयते । न च विलक्षणत्वे प्रकृतिविकारभावो दृष्टः । नहि रुचकादयो विकारा मृत्प्रकृतिका भवन्ति शरावादयो वा सुवर्णप्रकृतिकाः । मृदैव तु मृदन्विता विकाराः क्रियन्ते सुवर्णेन च सुवर्णान्विताः । तथेदमपि जगदचेतनं सुखदुःखमोहान्वितं सदचेतनस्यैव सुखदुःखमोहात्मकस्य कारणस्य

भाष्यका अनुवाद

निमित्तक फिर आक्षेप किया जाता है । चेतन ब्रह्म जगत्का कारण—प्रकृति है, ऐसा जो पीछे कहा गया है, वह ठीक नहीं है । क्योंकि यह विकार प्रकृतिसे विलक्षण है । ब्रह्मके कार्यरूपसे माना गया यह जगत् ब्रह्मसे विलक्षण, अचेतन और अशुद्ध दिखता है और ब्रह्म जगत्से विलक्षण, चेतन और शुद्ध है, ऐसा श्रुति कहती है । विलक्षण पदार्थोंमें परस्पर कार्यकारणभाव नहीं दिखाई देता है, क्योंकि मिट्टी रुचक आदि कार्योंकी उपादानकारण नहीं हो सकती है और शराव आदिका कारण सुवर्ण नहीं हो सकता । घट आदि मिट्टीके पदार्थ मिट्टीसे ही बनाए जाते हैं और रुचक आदि सुवर्णके पदार्थ सुवर्णसे ही बनाये जाते हैं । उसी प्रकार यह जगत् भी अचेतन एवं सुख, दुःख और मोहसे युक्त होनेके कारण अचेतन और सुख-दुःखमोहात्मक कारणका ही कार्य होना चाहिए, विलक्षण ब्रह्मका कार्य हो, यह युक्त नहीं

रत्नप्रभा

समन्वयासिद्धिः तत्सिद्धिश्चति पूर्ववत् फलम् । जगत् न ब्रह्मप्रकृतिकम्, तद्विलक्षणत्वाद्, यद्यद्विलक्षणं तन्न तत्प्रकृतिकं यथा मृद्विलक्षणा रुचकादय इत्यर्थः । सुखदुःखमोहाः—सत्त्वरजस्तमांसि, तथा च जगत् सुखदुःखमोहात्मकसामान्य-प्रकृतिकम्, तदन्वितत्वाद्, यदित्थं तत्तथा यथा मृदन्विता घटादय इत्याह—

रत्नप्रभाका अनुवाद

होनेसे प्रबल होनेके कारण उससे विरुद्ध है, इस प्रकार प्रत्युदाहरणसे पूर्वपक्ष करते हैं—“न विलक्षणत्वात्” इत्यादिसे । पूर्व अधिकरणके समान इस अधिकरणमें भी पूर्वपक्षमें समन्वयकी असिद्धि और सिद्धान्तमें समन्वयकी सिद्धि फल हैं । जगत् ब्रह्मप्रकृतिक नहीं है, उससे विलक्षण होनेसे, जो जिससे विलक्षण होता है, वह उससे उत्पन्न नहीं कहा जाता, जैसे कि मृत्तिकासे विलक्षण रुचक आदि मृत्प्रकृतिवाले नहीं हैं । सुखदुःखमोह—सत्त्व, रज और तम । जगत् सुखदुःखमोहरूप एक उपादान कारणसे उत्पन्न है, क्योंकि सुख, दुःख आदिसे युक्त है, जो जिससे अन्वित होता है, वह उससे उत्पन्न होता है, जैसे मृत्तिकासे

भाष्य

कार्यं भवितुमर्हति, न विलक्षणस्य ब्रह्मणः । ब्रह्मविलक्षणत्वं चाऽस्य जगतोऽशुद्ध्यचेतनत्वदर्शनादवगन्तव्यम् । अशुद्धं हीदं जगत् सुखदुःखमोहात्मकतया प्रतीयते, प्रीतिपरितापविषादादिहेतुत्वात् स्वर्गनरकाद्युच्चावचप्रपञ्चत्वाच्च । अचेतनं चेदं जगत्, चेतनं प्रति कार्यकरणभावेनोपकरणभावोपगमात् । नहि साम्ये सत्युपकार्योपकारकभावो भवति, नहि प्रदीपौ परस्परस्योपकुरुतः । ननु चेतनमपि कार्यकरणं स्वामिभृत्यन्यायेन भोक्तुरूप-

भाष्यका अनुवाद

है । और यह जगत् ब्रह्मसे विलक्षण है, यह बात इसमें अशुद्धि, अचेतनत्व आदि देखनेसे प्रतीत होती है । इसमें सन्देह नहीं है कि यह जगत् अशुद्ध है, क्योंकि सुखदुःखमोहात्मक होनेसे प्रीति, परिताप, विषाद आदिका हेतु है और स्वर्ग, नरक आदि अनेक प्रकारके प्रपञ्चोंसे भरा है । और जगत् अचेतन है, क्योंकि शरीर, इन्द्रिय आदि रूपसे चेतनका उपकारक है । यदि साम्य—सादृश्य हो, तो उपकार्योपकारकभाव ही नहीं बन सकता । दो दीपक परस्पर उपकारक नहीं होते । परन्तु जैसे सेवक स्वामीका उपकारक होता है, वैसे चेतनभूत देह, इन्द्रिय, आदि भी भोक्ताके उपकारक हो सकते हैं, नहीं, क्योंकि स्वामी और सेवकमें भी अचेतन अंश ही चेतनके प्रति उपकारक

रत्नप्रभा

मृदैवेति । जगतः ब्रह्मविलक्षणत्वं साधयति—ब्रह्मविलक्षणत्वञ्चेति । यथा हि एक एव स्त्रीपिण्डः पतिसपत्न्युपपत्तीनां प्रीतिपरितापविषादादीन् करोति, एवमन्येऽपि भावा द्रष्टव्याः । तत्र प्रीतिः—सुखम्, परितापः—शोकः, विषादः—भ्रमः । आदिपदाद् रागादिग्रहः । उभयोः चेतनत्वेन साम्याद् उपकार्योपकारकभावो न स्यादिति अयुक्तम्, स्वामिभृत्ययोः व्यभिचारादिति

रत्नप्रभाका अनुवाद

अन्वित घट मृत्तिकासे उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं—“मृदैव” इत्यादिसे । जगत्को ब्रह्मसे विलक्षण सिद्ध करते हैं—“ब्रह्मविलक्षणत्वं च” इत्यादिसे । जैसे एक ही स्त्रीपिण्ड पति, सपत्नी और उपपतिके प्रेम, परिताप और विषादका हेतु होता है, उसी प्रकार अन्य पदार्थोंमें भी समझना चाहिए । प्रीति—सुख, परिताप—शोक, विषाद—भ्रम । आदि पदसे राग आदिका ग्रहण करना चाहिए । दोनों चेतन होनेसे उपकार्य-उपकारकभाव नहीं होता, यह अयुक्त है, क्योंकि स्वामी सेवकमें उक्त नियमका भंग

(१) एक उपकार्य और दूसरा उपकारक हो, ऐसी स्थिति ।

भाष्य

करिष्यति । न, स्वामिभृत्ययोरप्यचेतनांशस्यैव चेतनं प्रत्युपकारकत्वात् । यो ह्येकस्य चेतनस्य परिग्रहो बुद्ध्यादिरचेतनभागः स एवाऽन्यस्य चेतनस्योपकरोति न तु स्वयमेव चेतनश्चेतनान्तरस्योपकरोत्यपकरोति वा । निरतिशया ह्यकर्तारश्चेतना इति साङ्ख्या मन्यन्ते । तस्मादचेतनं कार्यकरणम् । न च काष्ठलोष्टादीनां चेतनत्वे किञ्चित् प्रमाणमस्ति । प्रसिद्धश्चायं चेतनाचेतनविभागो लोके । तस्माद् ब्रह्मविलक्षणत्वान्नेदं जगत् तत्प्रकृतिकम् ।

योऽपि कश्चिदाचक्षीत श्रुत्वा जगत्श्चेतनप्रकृतिकतां तद्वलेनैव समस्तं जगच्चेतनमवगमयिष्यामि, प्रकृतिरूपस्य विकारेऽन्वयदर्शनात् । अभिभावनं भाष्यका अनुवाद

होता है । एक चेतनका परिग्रह—उपकारक बुद्धि आदि जो अचेतन भाग हैं, वे ही अन्य चेतनके उपकारक होते हैं, परन्तु स्वयं चेतन अन्य चेतनका उपकारक या अपकारक नहीं होता, क्योंकि चेतन अतिशय रहित और अकर्ता है, ऐसा सांख्य मानते हैं । इसलिए देह, इन्द्रिय आदि अचेतन हैं । लकड़ी और ढेले आदिके चेतन होनेमें कोई प्रमाण नहीं है । लोकमें चेतन और अचेतनका विभाग प्रसिद्ध है । इसलिए ब्रह्मसे विलक्षण होनेसे इस जगत्की प्रकृति ब्रह्म नहीं है ।

जगत्की प्रकृति चेतन है, ऐसा श्रुतिद्वारा जानकर उसके ही बलसे समस्त जगत्को चेतन सिद्ध करूँगा, क्योंकि प्रकृतिस्वरूपकी विकारमें अनुवृत्ति

रत्नप्रभा

शङ्कते—ननु चेतनमपीति । भृत्यदेहस्यैव स्वामिचेतनोपकारकत्वात् न व्यभिचार इत्याह—नेत्यादिना । उत्कर्षापकर्षशून्यत्वाच्चेतनानां मिथो न उपकारकत्वमित्याह—निरतिशया इति । तस्माद्—उपकारकत्वात् ।

श्रुतचेतनप्रकृतिकत्वबलेन जगच्चेतनमेव इत्येकदेशिमत्म् उस्थापयति—योऽपीति । घटादेश्चेतनत्वमनुपलब्धिबाधितमित्यत आह—अभिभावनन्त्विति ।

रत्नप्रभाका अनुवाद

दिखाई देता है, ऐसी शंका करते हैं—“ननु चेतनमपि” इत्यादिसे । सेवकका देह ही स्वामीके चेतन आत्माका उपकारक होता है, इससे व्यभिचार नहीं है, ऐसा कहते हैं—“न” इत्यादिसे । चेतन आत्मामें उत्कर्ष या अपकर्ष न होनेसे वे परस्पर उपकारक नहीं होते, ऐसा कहते हैं—“निरतिशया” इत्यादिसे । तस्माद्—उपकारक होनेसे ।

जगत् चेतनसे उत्पन्न हुआ है, ऐसा श्रुति कहती है, उस कथनके बलसे जगत् चेतन ही है ऐसा एकदेशीका मत उठाते हैं—“योऽपि” इत्यादिसे । परन्तु घट आदिका चेतनत्व

भाष्य

तु चैतन्यस्य परिणामविशेषाद् भविष्यति । यथा स्पष्टचैतन्यानामप्यात्मनां स्वापमूर्छाद्यवस्थासु चैतन्यं न विभाव्यत एवं काष्ठलोष्टादीनामपि चैतन्यं न विभावयिष्यते । एतस्मादेव च विभावितत्वाविभावितत्वकृताद् विशेषाद् रूपादिभावाभावाभ्यां च कार्यकरणानामात्मनां च चेतनत्वाविशेषेऽपि गुणप्रधानभावो न विरोत्स्यते । यथा च पार्थिवत्वाविशेषेऽपि मांसस्र्पादनादीनां प्रत्यात्मवर्तिनो विशेषात् परस्परोपकारित्वं भवत्येवमिहापि भविष्यति । प्रविभागप्रसिद्धिरप्यत एव न विरोत्स्यत इति ।

भाष्यका अनुवाद

देखी जाती है और विशेष परिणामके कारण चैतन्य अभिव्यक्त नहीं होता, जैसे स्पष्टतया जिनकी चेतनतामें किसीको सन्देह नहीं है, ऐसे आत्माओंका भी चैतन्य निद्रा, मूर्छा आदि अवस्थाओंमें प्रतीत नहीं होता, वैसे ही लकड़ी, पत्थर आदिका चैतन्य भी प्रतीत नहीं होता है । और इसी अभिव्यक्ति और अनभिव्यक्तिजन्य विशेषसे और रूप आदिके अस्तित्व और अभावके कारण देह, इन्द्रिय और आत्माओंमें चेतनत्वका विशेष नहीं है, तो भी गुण और प्रधानभावका निवारण कौन कर सकता है ? जैसे मांस, सूप, ओदन आदि सामान्यरूपसे पृथिवीविकार होनेपर भी प्रत्यात्मामें रहनेवाले विशेषसे परस्पर उपकारक होते हैं, वैसे ही यहां भी होगा । और इसीसे विभागकी प्रसिद्धिमें भी कोई विरोध नहीं है, ऐसा जो कोई कहे ।

रत्नप्रभा

अन्तःकरणान्यपरिणामत्वात् सतोऽपि चैतन्यस्य अनुपलब्धिरित्यर्थः । अन्तःकरणाद् अन्यस्य वृत्त्युपरागदशायामेव चैतन्याभिव्यक्तिः नाऽन्यदा इति भावः । वृत्त्यभावे चैतन्यानभिव्यक्तौ दृष्टान्तः—यथेति । आत्मानात्मनोः चेतनत्वे स्वस्वामिभावः कुतः इत्यत आह—एतस्मादेवेति । साम्येऽपि प्रातिस्विकस्वरूपविशेषात् शेषशेषित्वे दृष्टान्तः—यथा चेति । चेतनाचेतनभेदः कथम्,

रत्नप्रभाका अनुवाद

उपलब्ध नहीं होता, इस अनुपलब्धिसे बाधित है, इसपर कहते हैं—“अविभावनं तु” इत्यादि । घटादिरूप परिणाम अन्तःकरणसे भिन्न है, अतएव उसमें चैतन्य रहनेपर भी उसकी उपलब्धि नहीं होती है । अन्तःकरणसे भिन्न परिणाममें वृत्तिसंबन्धसमयमें ही चैतन्यकी अभिव्यक्ति होती है, अन्य समयमें नहीं होती है, इस विषयमें दृष्टान्त कहते हैं—“यथा” इत्यादिसे । आत्मा और अनात्मा दोनों चेतन हों, तो उनका स्वस्वामिभावसंबन्ध कैसे हो सकता है, इसपर कहते हैं—“एतस्मादेव” इत्यादि । सादृश्य रहनेपर भी अपने अपने स्वरूपके वैलक्षण्यसे अंगांगिभाव होता है, इस विषयमें दृष्टान्त कहते हैं—“यथा

भाष्य

तेनाऽपि कथंचिच्चेतनत्वाचेतनत्वलक्षणं विलक्षणत्वं परिह्रियेत । शुद्ध-अशुद्धित्वलक्षणं तु विलक्षणत्वं नैव परिह्रियते न चेतनरदपि विलक्षणत्वं परिहर्तुं शक्यत इत्याह—तथात्वं च शब्दादिति । अनवगम्यमानमेव हीदं लोके समस्तस्य वस्तुनश्चेतनत्वं चेतनप्रकृतिकत्वश्रवणाच्छब्दशरण-तया केवलयोत्प्रेक्ष्येत, तच्च शब्देनैव विरुध्यते । यतः शब्दादपि तथा-त्वमवगम्यते । तथात्वमिति प्रकृतिविलक्षणत्वं कथयति । शब्द एव 'विज्ञानं चाविज्ञानं च' (तै० २।६) इति कस्यचिद्विभागस्याऽचेतनतां श्रावयंश्चेतनाद् ब्रह्मणो विलक्षणमचेतनं जगच्छ्रावयति ॥४॥

भाष्यका अनुवाद

तो उस कथनसे भी किसी प्रकार चेतनत्व और अचेतनत्वरूप वैलक्षण्यका परिहार हो सकता है, परन्तु शुद्धि और अशुद्धिरूप वैलक्षण्यका परिहार तो हो ही नहीं सकता । इसी प्रकार दूसरी विलक्षणताका भी परिहार नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं—'तथात्वं च शब्दात्' । लोकमें समस्त पदार्थ चेतन नहीं प्रतीत होते हैं, अतिसं चेतनसे उत्पत्ति कहनेके कारण यदि केवल श्रुति-प्रमाणसे उनमें चेतनताकी कल्पना की जाय, तो वह चेतनत्वकी कल्पना श्रुतिसे ही विरुद्ध होती है, क्योंकि श्रुतिसे भी तथात्व—वैसा स्वरूप जाननेमें आता है । तथात्वपदसे प्रकृतिसे विलक्षणताको सूत्रकार कहते हैं । 'विज्ञानं०' (विज्ञान और अविज्ञान) इस प्रकार किसी एक विभागकी अचेतनताका प्रति-पादन करनेवाली श्रुति ही चेतन ब्रह्मसे जगत् विलक्षण—अचेतन है, ऐसा प्रतिपादन करती है ॥ ४ ॥

रत्नप्रभा

इत्यत आह—प्रविभागेति । चैतन्याभिव्यक्त्यनभिव्यक्तिभ्यामित्यर्थः ।

सर्वस्य चेतनत्वम् एकदेश्युक्तम् अङ्गीकृत्य सांख्यः परिहरति—तेनापि कथञ्चिदिति । अङ्गीकारं त्यक्त्वा सूत्रशेषेण परिहरति—न चेत्यादिना । इतरत्—चेतनाचेतनत्वरूपम् । वैलक्षण्यम्—तथात्वशब्दार्थः । श्रुतार्थापत्तिः शब्देन बाध्या इति भावः ॥ ४ ॥

रत्नप्रभाका अनुवाद

च" इत्यादिसे । चेतन और अचेतनका भेद किस प्रकार है ? इसपर कहते हैं—"प्रविभाग" इत्यादि । इसीसे—चैतन्यकी अभिव्यक्ति और अनभिव्यक्तिसे ।

एकदेशी द्वारा कथित सबकी चेतनताका अङ्गीकार करके सांख्य उसका परिहार करते हैं— "तेनापि कथंचित्" इत्यादिसे । अङ्गीकारका त्याग करके सूत्रके शेष भागसे उसका परिहार

भाष्य

ननु चेतनत्वमपि क्वचिदचेतनत्वाभिमत्तानां भूतेन्द्रियाणां श्रूयते, यथा 'मृदब्रवीत्' 'आपोऽब्रुवन्' (श० ब्रा० ६।१।३।२, ४) इति, 'तत्तेज ऐक्षत' 'ता आप ऐक्षन्त' (छा० ६।२।३, ४) इति चैवमाद्या भूतविषया चेतनत्वश्रुतिः, इन्द्रियविषयाऽपि 'ते हेमे प्राणा अहंश्रेयसे विवदमाना ब्रह्म जग्मुः' (बृ० ६।१।७) इति, 'ते ह वाचमूचुस्त्वं न उद्रायेति' (बृ० १।३।२) इत्येवमाद्येन्द्रियविषयेति । अत उत्तरं पठति—

भाष्यका अनुवाद

परन्तु अचेतनरूपसे माने हुए भूत और इन्द्रियोंमें भी कहीं कहीं श्रुतिमें चेतनत्व दिखाई देता है, जैसे 'मृदब्रवीत्' (मृत्तिका बोली) 'आपोऽब्रुवन्' (जल बोले) इस प्रकार और 'तत्तेज०' (उस तेजने देखा) 'ता आप०' (उन जलोंने देखा) इत्यादि प्रकारसे भूतोंके लिए चेतनत्वश्रुति है । इन्द्रियोंके लिए भी है, जैसे कि 'ते हेमे प्राणा अहंश्रेयसे०' (निश्चय ये प्राण अपनी अपनी श्रेष्ठताके लिए विवाद करते हुए ब्रह्माके पास गये) 'ते ह वाचमूचुस्त्वं०' (उन देवोंने वाणीसे कहा कि तुम हमारे लिए उद्राताका कर्म करो) इत्यादि इन्द्रियोंके लिए चेतनत्वश्रुति है । इसलिए उत्तर सूत्र पढ़ते हैं—

रत्नप्रभा

श्रुतिसाहाय्यात् न बाध्या इत्युत्तरसूत्रव्यावर्त्यं शङ्कते-नन्विति । मृदादीनां वक्तृत्वादिश्रुतेः तदभिमानीविषयत्वात् तथा "विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्च" (तै० २।५।१) इति चेतनाचेतनविभागशब्दस्य उपचरितार्थत्वं न युक्तमिति सांख्यः समाधत्ते—

रत्नप्रभाका अनुवाद

करते है—“न च” इत्यादिसे । इतरत्—चेतनाचेतनत्वरूप । तथात्वशब्दका वैलक्षण्य अर्थ है । श्रुतार्थापत्ति शब्दसे बाध्य है, ऐसा भाव है ॥ ४ ॥

श्रुति सहायक है, इसलिए अर्थापत्तिका बाध नहीं होता है, इस प्रकार अभिम सूत्रसे निरसनीय शंका कहते हैं—“ननु” इत्यादिसे । मृत्तिका आदिको वक्ता कहनेवाली श्रुति उनके अधिष्ठाता देवताओंका प्रतिपादन करती है, इसलिए 'विज्ञानं चा०' (विज्ञान और अविज्ञान) इस प्रकार चेतन और अचेतनके विभागके वाचक शब्दोंका लक्ष्यार्थ युक्त नहीं है, ऐसा सांख्य समाधान करते हैं—



अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ॥५॥

पदच्छेद—अभिमानिव्यपदेशः, तु, विशेषानुगतिभ्याम् ।

पदार्थोक्ति—अभिमानिव्यपदेशस्तु—‘ते हेमे प्राणा अहंश्रेयसे विवदमाना’ इत्यादौ न प्राणादिमात्रस्य व्यपदेशः, किन्तु प्राणाद्यभिमानिनीनां देवतानां व्यपदेशः [भवति, कुतः] विशेषानुगतिभ्याम्—‘एता ह वै देवता अहंश्रेयसे विवदमानाः’ इति प्राणानां चेतनवाचिना देवताशब्देन विशेषितत्वात्, ‘अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्’ इत्यादिमन्त्रार्थवादादिषु सर्वत्र तदभिमानिदेवतानामनुगतिश्रवणाच्च [तस्मादचेतनस्य जगतो वैलक्षण्याच्च चेतनप्रकृतिकत्वम्] ।

भाषार्थ—‘ते हेमे प्राणा०’ (ये प्राण अपनी अपनी श्रेष्ठताके बारेमें विवाद करते हुए) इत्यादि श्रुतिमें केवल प्राणका कथन नहीं है, किन्तु प्राणाद्यभिमानि देवताओंका कथन है, क्योंकि ‘एता ह वै देवता०’ (ये देवता अपनी अपनी श्रेष्ठताके बारेमें विवाद करते हुए) इस प्रकार चेतनवाचक देवताशब्दसे प्राण विशेषित हैं और ‘अग्निर्वाग्भूत्वा०’ (अग्निने वाक् होकर मुखमें प्रवेश किया) इत्यादि मंत्र और अर्थवादोंमें सब जगह प्राणाद्यभिमानि देवताओंका अनुगमन कहा गया है । इससे प्रतीत होता है कि अचेतन जगत् चेतनसे विलक्षण होनेके कारण चेतनप्रकृतिक नहीं है ।

भाष्य

तुशब्द आशङ्कामपनुदति । न खलु मृदब्रवीदित्येवंजातीयकया श्रुत्या भूतेन्द्रियाणां चेतनत्वमाशङ्कनीयम्, यतोऽभिमानिव्यपदेश एषः । मृदाद्यभिमानिन्यो वागाद्यभिमानिन्यश्च चेतना देवता वदनविसंवदनादिषु चेत-

भाष्यका अनुवाद

तुशब्द आशंकाका निराकरण करता है । ‘मृदब्रवीत्’ (मृत्तिका बोली) इस प्रकारकी श्रुतिसे भूत और इन्द्रियाँ चेतन हैं, यह शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यह कथन उनके अभिमानि देवताओंका है । मृत्तिका आदिके और वाणी आदिके अभिमानि चेतन देवताओंका वाद-विवाद आदि चेतनोचित

रत्नप्रभा

अभिमानिती । विसंवदनम्—विवादः, न भूतमात्रम् इन्द्रियमात्रं वा चेतनत्वेन

रत्नप्रभाका अनुवाद

“अभिमानि” इत्यादिसे । विसंवदन—विवाद । केवल भूतोंका या इन्द्रियोंका

भाष्य

नोचितेषु व्यवहारेषु व्यपदिश्यन्ते न भूतेन्द्रियमात्रम् । कस्मात् ? विशेषा-
नुगतिभ्याम् । विशेषो हि भोक्तृणां भूतेन्द्रियाणां च चेतनाचेतनप्रविभाग-
लक्षणः प्रागभिहितः । सर्वचेतनतायां चाऽसौ नोपपद्येत । अपि च कौपीतकिनः
प्राणसंवादे करणमात्राशङ्काविनिवृत्तयेऽधिष्ठातृचेतनपरिग्रहाय देवताशब्देन
विशिषन्ति—‘एता ह वै देवता अहंश्रेयसे विवदमानाः’ इति । ‘ता वा
एताः सर्वा देवताः प्राणे निःश्रेयसं विदित्वा’ (कौ० २।१४) इति च । अनु-
गताश्च सर्वत्राभिमानिन्यश्चेतना देवता मन्त्रार्थवादेतिहासपुराणादिभ्योऽ-

भाष्यका अनुवाद

व्यवहारमें अभिधान है, केवल भूत और इन्द्रियोंका अभिधान नहीं है ।
किससे ? विशेष और अनुगतिसे । भोक्ताओं एवं भूत और इन्द्रियोंमें चेतन
और अचेतन विभागरूप विशेष पहले कहा जा चुका है । और सबके चेतन
होनेपर यह भेद उपपन्न नहीं होगा । और कौपीतकि शाखावाले प्राणसंवादमें
केवल इन्द्रियोंकी आशंका निवृत्त करनेके लिए और चेतन अधिष्ठाताका स्वीकार
करनेके लिए ‘एता ह वै देवताः०’ (ये प्रसिद्ध देवता अपनी अपनी श्रेष्ठताके लिए
विवाद करते हुए) और ‘ता वा एताः सर्वा देवताः०’ (ये सब देवता प्राणमें
श्रेष्ठता जानकर) इस प्रकार इन्द्रियोंके लिए ‘देवताः’ यह विशेषण देते हैं ।
अभिमानि देवता सर्वत्र अनुगत हैं, यह मंत्र, अर्थवाद, इतिहास, पुराण आदिसे

रत्नप्रभा

व्यपदिश्यते, लोकवेदप्रसिद्धविभागवाधायोगादित्यर्थः । विशेषपदस्याऽर्थान्तरमाह—
अपि चेति । अहंश्रेयसे स्वस्वश्रेष्ठत्वाय प्राणाः विवदमाना इत्युक्तप्राणानां चेतन-
वाचिदेवतापदेन विशेषितत्वात् प्राणादिपदैः अभिमानिव्यपदेश इत्यर्थः । प्राणे
निःश्रेयसं श्रेष्ठ्यं विदित्वा प्राणाधीना जाता इत्यर्थः । अनुगतिं बहुधा व्याचष्टे—
अनुगताश्चेति । तस्मै—प्राणाय, बलिहरणम्—वागादिभिः स्वीयवसिष्ठत्वादि-

रत्नप्रभाका अनुवाद

चेतनरूपसे व्यपदेश नहीं है, क्योंकि लोक और वेदमें प्रसिद्ध जो विभाग है,
उसका बाध हो, यह युक्त नहीं है । विशेषपदका अन्य अर्थ कहते हैं—“अपि च”
इत्यादिसे । अपनी अपनी श्रेष्ठताके लिए विवाद करनेवाले प्राण चेतनवाची देवताशब्दसे
विशिष्ट हुए हैं, इसलिए प्राण आदि पदोंसे अधिष्ठाता देवताओंका व्यपदेश है, ऐसा अर्थ है ।
‘प्राणे निःश्रेयसं०’—प्राणमें श्रेष्ठता जानकर प्राणके अधीन हुए, ऐसा अर्थ है । अनुगतिका
अनेक व्याख्यान करते हैं—“अनुगताश्च” इत्यादिसे । ‘तस्मै बलिहरणम्’—प्राणके

अच्युतके उद्देश्य और नियम

उद्देश्य—

सनातन-धर्मकी उन्नति करनेवाले उत्तमोत्तम प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थोंका भाषानुवाद प्रकाशित कर जनतामें ज्ञान और भक्तिका प्रचार करना इसका उद्देश्य है।

प्रबन्ध-सम्बन्धी नियम—

- (१) 'अच्युत' प्रतिमास पूर्णिमाको प्रकाशित होता है।
- (२) इसका वार्षिक मूल्य भारत के लिये ६) रु० और विदेशके लिये ८) रु० है। एक संख्याका मूल्य ॥) है।
- (३) ग्राहकोंको मनीआर्डरद्वारा रूपये भेजनेमें सुविधा होगी। वी० पी० द्वारा मंगानेसे रजिस्ट्रीका व्यय उनके जिम्मे अधिक पड़ जायगा।
- (४) मनीआर्डरसे रूपये भेजनेवाले ग्राहक महाशयोंको कूपनपर रूपयोंकी तादाद, रूपये भेजनेका मतलब, अपना पूरा पता, नये ग्राहकोंको 'नये ग्राहक' और पुराने ग्राहकोंको अपना ग्राहक-नम्बर स्पष्ट अक्षरोंमें लिख देना चाहिये।
- (५) उत्तरके लिये जवाबी पोस्टकार्ड या टिकट भेजना चाहिये।
- (६) जिन महाशयोंको अपना पता बदलवाना हो, उन्हें कार्यालयको पता बदलवानेके विषयमें पत्र लिखते समय अपना पुराना पता तथा ग्राहक-नम्बर लिखना नहीं भूलना चाहिये।

व्यवस्थापक

अच्युत-ग्रन्थमाला-कार्यालय,

ललिताघाट, बनारस।



विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

